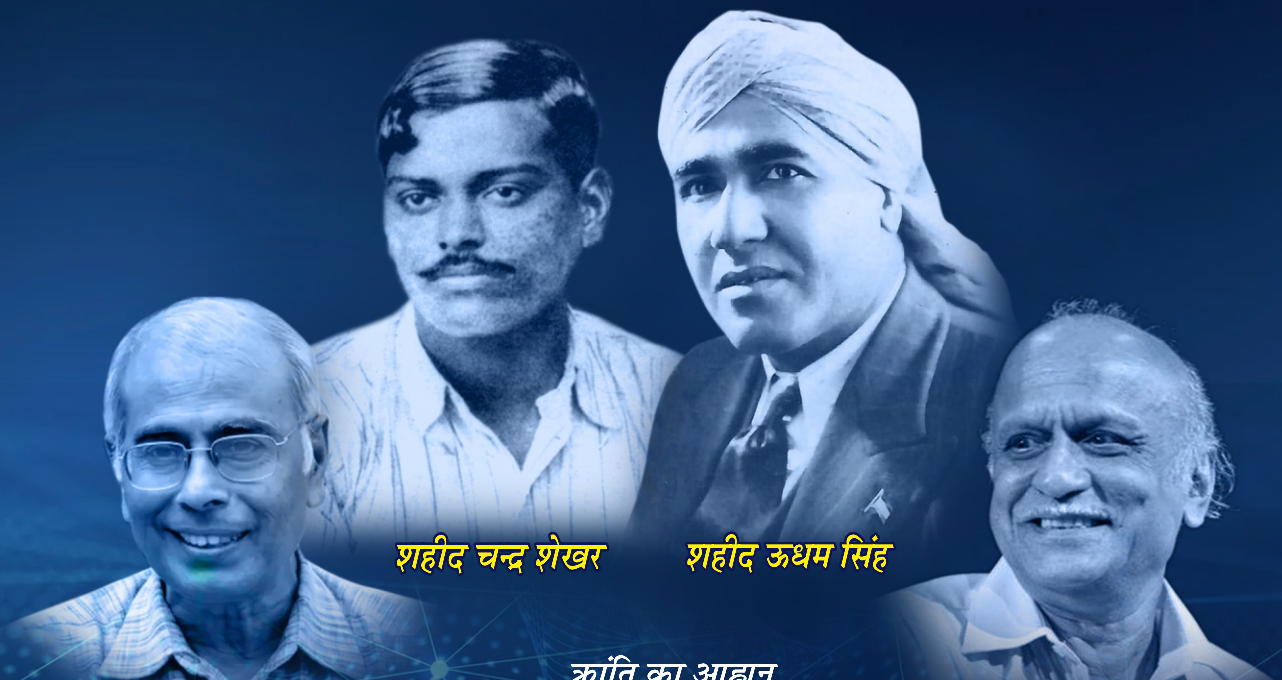
वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL PATH

जूलाई–अगस्त 2026



शहीद चन्द्र शेखर

शहीद ऊधम सिंह

डा. नरेंद्र दाभोलकर

एम एम कलबुरगी

क्रांति का आह्वान

जब तक अन्याय का सिंहासन धरती पर कायम रहेगा,
हर सीने में क्रांति का दीपक तब तक जलता रहेगा।
जो डरकर सच से मुँह मोड़े, वह इतिहास नहीं लिखता,
संघर्षों की अग्नि में तपकर ही इंसान निखरता।
उठो जवानो! वक़्त पुकारे, अब परिवर्तन लाना है,
मेहनतकश के श्रम का हर अधिकार उसे दिलाना है।
कलम, विचार और कर्म से नई दिशा बनानी है,
जनता की ताक़त से ही नई सुबह सजानी है।

–रामधारी सिंह दिनकर

30/-

क्या लिखूं ?

कुछ तो लिखो....
अरे भाई कुछ लिखो
क्या लिखूं
कुछ तो लिखो
परन्तु कुछ हट कर
सुलगता हुआ, बभूक सा
पिघलते लोहे जैसा
उगते सूर्य जैसा
किसी पर्वत के सीने से
फूटते लावे जैसा

बहुत कुछ घट रहा है
खामोशी हमें मार डालेगी
इस तन्द्रा को तोड़ो
खोल से बाहर आओ
कोई दमामा बजाओ
और अवाम को जगाओ

आप ही बताएं
क्या लिखूं

जब भी लिखने की सोचता हूं
तो ज़ह्न में
प्रश्नों के घने स्याह बादल
फटने को तत्पर
क्रन्दन करने लगते हैं
दामिनी क्रोधित हो जातीं है
और मैं
प्रश्नों के उत्तर ढूँढने लगता हूं

पर भाई, लिखो
अवश्य लिखो

क्या लिखूं
चौक-चौराहे पर चीखते
एक निवाले की इंतज़ार में
बूड़े हो रहे
उदास चेहरों के बारे में लिखूं

या किसी समय नंग
सियासत दान की
अकूत जायदाद का राज़ लिखूं

या जलती, पिघलती सड़क पर
रोज़ी रोटी के लिये
मीलों मील चलते
मेहनतकश के पाँव से

रिसते लहू और फिस्स रहे
फफ़ोलों की गाथा लिखूं

अपने ही खोल में छुप गए
वा कुर्सी की लालसा में
सियासत के आगे दुम हिलाने
वाले
ज़मीर को नीलाम कर चुके
नागपुरी संतरे के रंग की
सिंर पे पगड़ी धर चुके
बुद्धिजीवियों को बुरा-भला कहूँ

या उन विचारवानों की चर्चा करूं
जिन्हें सच कहने के लिये
डाल दिया गया है
बिना मुक़दमा चलाए
काल कोठरी में

या उन युवतिओं के बारे लिखूं
जो इंसाफ़ ना मिलने पर
झूल जाती हैं
सर के दुपट्टे का फंदा बना कर

बहुत से प्रश्न है
जिन के उत्तर
शायद भविष्य के गर्भ में
बैठे हैं कुंडली मार कर
बुद्धिजीवियों के जागने की
प्रतीक्षा में

डॉ. रतन सिंह ढिल्लों
मो: 94682 93682



मुख्य संपादक
कुलजीत डँगर खेड़ा
kuljittarkshil@gmail.com
9781925566
संपादक
गुरमीत अम्बाला
tarksheeleditor@gmail.com
94160 36203
संपादकी मंडल
जसवंत मोहाली (98555-30721)
अजायब जलालाना (94167 24331)
कृष्ण कायत (98961 05643)

विदेशी प्रतिनिद्धि
बीरबल भदौड़, कैलगिरी
+ 1 204 894-4371
बलदेव रहिपा, टरांटो
+ 1 41 688 17202
अच्छर सिंह खरलवीर (U.K.)
+ 1 44 748 635 1185
अवतार गोंदारा (U.S.A.)
+ 1 (559) 375-2589

पत्रिका शुल्क :-
वार्षिक : 150/- रू.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

राजिन्दर भदौड़, प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी की तरफ से तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट (जलन्धर) से मुद्रित करके मुख्य कार्यालय तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.), बरनाला, (पंजाब) से तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण के लिए जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400 में जमा करा सकते है।
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर
+91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए :

www.tarksheel.org,
http://tarksheelblog.wordpress.com
सर्च करें: tarksheel :
www.archive.org
Readwhere.com

संपादकीय

हाल ही में भारत के मुख्य न्यायाधीश की ''कॉकरोच'' संबंधी टिप्पणी ने देशभर में तीखी बहस को जन्म दिया। सोशल मीडिया से लेकर राजनीतिक गलियारों और छात्र समुदाय तक, इस टिप्पणी पर अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ सामने आईं। बाद में मुख्य न्यायाधीश ने स्पष्ट किया कि उनका निशाना देश के बेरोजगार युवा नहीं, बल्कि फर्जी डिग्री लेकर व्यवस्था में घुसपैठ करने वाले लोग हैं। फिर भी यह बयान हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि संवैधानिक पदों पर बैठे व्यक्तियों की भाषा कितनी संवेदनहीन हो गई है।

न्यायपालिका लोकतंत्र का सबसे विश्वसनीय स्तंभ मानी जाती है। आम नागरिक अदालतों को अंतिम उम्मीद के रूप में देखते हैं। ऐसे में यदि न्यायपालिका के सर्वोच्च पद से कोई कठोर या आपत्तिजनक शब्द सामने आता है, तो उसका प्रभाव केवल एक बयान तक सीमित नहीं रहता। ''कॉकरोच'' जैसे शब्द आम जनता, विशेषकर युवाओं के मन में अपमान, गुस्सा और असंतोष की भावना पैदा कर सकते हैं। यही कारण है कि इस टिप्पणी के बाद सोशल मीडिया पर ''कॉकरोच जनता पार्टी'' जैसे व्यंग्यात्मक अभियान भी शुरू हो गए।

हालांकि, इस पूरे विवाद का दूसरा पक्ष भी समझना आवश्यक है। मुख्य न्यायाधीश ने बाद में स्पष्ट किया कि उनकी टिप्पणी उन लोगों के लिए थी जो फर्जी डिग्रियों के माध्यम से न्याय व्यवस्था और अन्य पेशों की गरिमा को नुकसान पहुँचा रहे हैं। यह चिंता पूरी तरह उचित है। यदि कानून और न्याय से जुड़े पेशों में अयोग्य या फर्जी लोग प्रवेश करेंगे, तो जनता का भरोसा कमजोर होगा। न्यायपालिका का यह दायित्व है कि वह संस्थाओं की कारगुजारी पर ध्यान रखे।

लेकिन प्रश्न यह है कि क्या ऐसी चिंता व्यक्त करने के लिए अपमानजनक उपमाओं का प्रयोग आवश्यक था? लोकतांत्रिक व्यवस्था में शब्दों का महत्व बहुत बड़ा होता है। खासकर जब वे शब्द किसी संवैधानिक संस्था के प्रमुख द्वारा बोले जाएँ। न्यायपालिका से समाज संयम, धैर्य और संवेदनशीलता की अपेक्षा करता है। कठोर भाषा कभी-कभी वास्तविक मुद्दे को पीछे छोड़ देती है और पूरा ध्यान केवल विवाद पर केंद्रित हो जाता है। इस मामले में भी यही हुआ। फर्जी डिग्रियों और न्याय व्यवस्था में गिरते मानकों पर गंभीर चर्चा होनी चाहिए थी, लेकिन बहस ''कॉकरोच'' शब्द तक सीमित होकर रह गई।

आज देश का युवा पहले ही बेरोजगारी, प्रतियोगी परीक्षाओं में गड़बड़ियों और अवसरों की कमी जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसे समय में युवाओं को सम्मान और विश्वास देने की आवश्यकता है। यदि किसी बयान से यह संदेश जाए कि व्यवस्था युवाओं को तुच्छ समझती है, तो यह लोकतंत्र के लिए अच्छा संकेत नहीं होगा। यही कारण है कि सार्वजनिक पदों पर बैठे लोगों को अपने शब्दों का चयन अत्यंत सावधानी से करना चाहिए।

इस विवाद का सकारात्मक पक्ष यह है कि इसने अभिव्यक्ति, जवाबदेही और संस्थाओं की मर्यादा पर नई बहस छेड़ दी है। लोकतंत्र में आलोचना और व्यंग्य स्वाभाविक हैं, लेकिन संस्थाओं के प्रति सम्मान भी बना रहना चाहिए। न्यायपालिका को भी यह समझना होगा कि जनता केवल उसके फैसलों को ही नहीं, बल्कि उसके व्यवहार और भाषा को भी ध्यान से देखती है।

यह मामला केवल एक टिप्पणी का नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक संवाद की मर्यादा का है। न्यायपालिका की गरिमा तभी मजबूत होगी जब उसकी भाषा भी उतनी ही न्यायपूर्ण और संतुलित दिखाई दे। संतुलित शब्द ही जनता और संस्थाओं के बीच विश्वास का पुल बना सकते हैं।

झाड़-फूँक, धागे और ताबीज

–राजिंदर भदौड़

झाड़-फूंक करने या धागा ताबीज पहनने की रीत बड़ी पुरानी है। जब बीमारियाँ या अन्य सामाजिक या प्रकृति में होने वाली घटनाओं के बारे में समाज को बहुत अधिक जानकारी नहीं थी, तो ऐसी मुश्किलों के गलत कारण बना लिए गए। कहने का आशय यह है कि दुख-दर्द के लिए 'दैवी शक्तियों' को जिम्मेदार मान लिया गया। जब कारण ही गलत माने गए, तो हल करने की विधियाँ भी गलत ही बना ली गई। क्रोधित हुई दैवी शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए या फौरी राहत के लिए, तरह-तरह के तरीके निश्चित करके उनकी पूर्ति के लिए व्यक्ति नियत कर दिए गए। धीरे-धीरे यह काम आसान और आदर-सम्मान वाला होने के कारण, कुछ लोगों ने इसे व्यवसाय के रूप में अपना लिया। भाँति-भाँति के प्रचार द्वारा समाज के बड़े हिस्से में यह प्रभाव अब भी चला आ रहा है कि दैवी शक्तियाँ हमारे संकटों के लिए जिम्मेदार हैं और कुछ लोग तांत्रिक, ज्योतिषी, डेरों वाले बाबे आदि इन दैवी-शक्तियों के माहिर हैं और वे झाड़-फूँक, धागे और ताबीज के द्वारा संकटों से छुटकारा दिला सकते हैं।

ये कथित 'सयाने' स्वयं अपने ढंग से जानी-अनजानी बीमारियों, संकटों के इलाज के लिए किसी पेड़ की टहनी के साथ, कोई फसल काटने वाली दरांती के साथ, कोई झाड़ू के साथ या कोई खुद के तैयार किए किसी लकड़ी के यंत्र के साथ झाड़-फूंक देते हैं। कोई राख देता है, कोई सात रंग के धागों को गाँठ मार देता है, कोई कागज पर 9 या 16 खाने बनाकर उनके अंदर अंक लिख देता है। बस जिस के जो समझ में आया, वही किए जाते हैं।

आज भी विज्ञान के युग के अंदर झाड़-फूंक कराने, ताबीज करने-कराने वालों की कमी नहीं।

प्रत्येक इलाके के अंदर किसी न किसी रोग/तकलीफ के झाड़-फूँक, ताबीज करने वालों के विज्ञापन सुनते रहते हैं। पीलिया का झाड़ा, टाइफाइड का झाड़ा, कैंसर का झाड़ा, रुके कामों को करवाने का ताबीज, नौकरी या विदेश जाने में बाधा दूर करने का ताबीज, आइल्ट्स में अच्छे बैंड का ताबीज, अदालतों में चल रहे केसों को अपने पक्ष में करने का ताबीज, नेताओं के जीतने का ताबीज देने वाले बाबा मशहूर हैं।किसी समय ज्ञान / खोजों की कमी सुविधाएँ न होने के कारण यह सारा कुछ, विकास के एक पड़ाव के दौरान विकसित हो गया। पर आज भी समाज में जिस हिस्से के पास ज्ञान / सुविधायों की कमी है, वहाँ तो अवैज्ञानिक क्रियाओं के होने की बात समझ में आती है, पर पढ़े-लिखे और सुविधापूर्ण लोगों का इन बातों को मानते जाना तो इस बात का पका संकेत है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण की सामाजिक स्थिति क्या है। एक कारण यह भी कहीं न कहीं काम कर रहा है कि जब सब तरफ से रोगी के ठीक न होने की पुष्टि हो जाती है तो पारिवारिक सोच कि चलो, झाड़ा लगवा कर, ताबीज पहनकर देख लेते हैं। इससे रोगी मानसिक रूप से और परिवार सामाजिक रूप से सुकून महसूस करता है।

समाज का अधिकतर गरीब वर्ग, जिसके पास महंगा इलाज कराने का सामर्थय नहीं है, वह मजबूरीवश झाड़-फूंक, ताबीज के चक्कर में उलझे हुए हैं। समाज के अंदर दुख-दर्द की दवाई के साथ-साथ झाड़-फूँक, ताबीजों का चक्कर भी बराबर चलता रहता है। लोगों के अंदर अलौकिक शक्तियों के अस्तित्व का अहसास व्यक्ति को यह फैसला करने ही नहीं देता कि इलाज दवाई से हुआ है या झाड़-फूँक, ताबीज से बल्कि कई बार तो रोगी के ठीक होने के बाद सारा श्रेय झाड़-फूंक या ताबीज को दिया जाता है। यदि कोई जाग्रत व्यक्ति ऐसी बात कर भी देता है कि जब दवाई चलती थी तो झाड़-फूँक, ताबीज की क्या जरूरत थी? इस पर कहा जाता है कि दवाई तो पहले भी चलती थी, लेकिन जब से झाड़ा किया है, ताबीज पहनाया है, दवाई का असर और बढ़ गया है। यदि दोनों में किसी एक विधि से इलाज कराने को कहा जाए तो कहेंगे कि आप पर पड़ी नहीं, जब पड़ेगी तब पता लगेगा। असल में कुछ बीमारियाँ विषाणु के कारण होती हैं। विषाणु की अपनी जीवन-अवधि होती है, जिसके बाद रोगी अपने आप ठीक हो जाता है। बस अधिक आराम की ही जरूरत होती है। ऐसे मामलों में झाड़-फूँक, ताबीज वाले अक्सर झूठा श्रेय ले जाते हैं। रोगों के लम्बे समय तक ठीक न होने के कारण भी लोग इस तरफ कोशिश करने लग जाते हैं।

असल में आजकल मुनाफाखोर अर्थतंत्र के अंतर्गत डॉक्टरों का बड़ा हिस्सा रोगी को ठीक करने की अपेक्षा, अपने कमीशन का अधिक ख्याल रखता है। इस कारण उन घटिया कम्पनियों की दवाइयों का अधिक प्रयोग करता है, जिनमें पैसे अधिक बचते हों। घटिया दवाइयों के कारण भी कई बार छोटी-छोटी बीमारियाँ ज्यादा समय ले जाती हैं।झाड़-फूँक या ताबीज के द्वारा ठीक होने वाले रोगियों के बारे अक्सर सवाल किए जाते हैं। एक बात बड़ी साफ है कि किसी भी झाड़-फूंक या ताबीज का असर किसी ऐसे छोटे बच्चे पर नहीं होता, जो बीमारियों के इलाज प्रति चेतना नहीं रखता। इसी प्रकार यह इलाज किसी पशु, पंक्षी पर भी असर नहीं करता, क्योंकि उसमें इस स्तर की मानसिक चेतना नहीं होती। हाँ, कुछेक अंधविश्वासी मानसिक वृत्ति वाले एक हद तक अपनी तकलीफ से क्षणिक शांति अनुभव करते हैं। इसमें भी किसी बाबा, तांत्रिक या डेरे वाले के झाड़-फूँक/ताबीज में कुछ भी ऐसा नहीं होता जो रोगी की तकलीफ को घटाता है। यह प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कथित बाबा की इलाके में चर्चा कितनी है, एजेंट ने बाबा के बारे में रोगी को क्या कुछ बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया है। कहने का आशय यह है कि रोगी की झाड़-फूंक ताबीज वाले बाबा के बारे में क्या सोच है। सोच के अनुसार ही उसी स्तर की मानसिक राहत मिलेगी। यह प्रभाव तो कई बार रोगी के लिए तांत्रिक होने का प्रभाव पाकर चैक भी किया जा चुका है। पर रोगी को असलियत पता लगने पर उसकी तकलीफ ज्यों की त्यों हो जाती है। यह पड़ताल तो कोई भी अपने आप थोड़ी सी हिम्मत के साथ कर सकता है। जिसकी भी किसी बाबा से ताबीज के साथ आराम आने वाली मानसिक स्थिति है, उसके लिए बाबा से ताबीज लेकर रास्ते में ताबीज को बदल दो, या अगर रोगी के पास नहीं है तो अपने पास से बाबा जैसा ताबीज बनाकर दे दो। आपकी तरफ से दिया गया ताबीज व्यक्ति के ऊपर पहले वाले (बाबा वाले) ताबीज जितना ही असर करेगा। असल में हमारे समाज में व्याप्त बीमारियों/मुश्किलों के असली कारण ढूँढ़ने के लिए अपनी सोच को वैज्ञानिक बनाना पड़ेगा। यदि हम असली कारण ढूँढ़ लेते हैं तो इलाज भी सही और समय पर हो सकेगा। समाज को ऐसे लोक-केंद्रित ढाँचे की जरूरत है जहाँ हर नागरिक को बढ़िया स्वास्थ्य, शिक्षा सुविधाएँ, बिना किसी भेदभाव के, समानता के आधार पर मिलें।

कफ़न (लघुकथा)



दोपहर का समय था और बहुत तेज़ गर्म हवा चल रही थी। सिरों पर गमछे लपेटे लोग एक अर्थी के साथ चल रहे थे। यह अर्थी एक तेईस वर्ष के युवक की थी। स्वयं को नशे का टीका लगाते हुए इसकी मौत हो गई थी। अर्थी जब गाँव के बस-अड्डे पर पहुँची, दो युवकों ने अर्थी को रोक लिया। एक ने हाथ ऊपर की ओर लहराते हुए कहा, ''अर्थी रोको, हमें हमारे दोस्त का मुँह देखना है।'' इन दोनों नशेड़ी दोस्तों की टाँगें बुरी तरह सूजी हुई थीं और श्मशान घाट तक अर्थी के साथ जा सकने की उनमें सामर्थ्य नहीं थी। अर्थी को झुकाया गया। दोनों दोस्तों ने मृत दोस्त का मुँह देखा। एक चिल्लाया, ''तू पहुँच यार, तेरे पीछे-पीछे हम भी आ रहे हैं।'' दूसरे ने अपने सिर पर से गमछा उतारा और अर्थी पर डालते हुए कहा, ''हमारी ओर से यह कफ़न कुबूल कर।'' जैसे ही अर्थी वापस ऊँची की गई, हवा से गमछा रूपी कफ़न उड़ गया। अब यह कफ़न उस ऊँचे से लाल साइनबोर्ड पर अटककर टँगा हुआ था, जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था - नशामुक्त गाँव।

-हरभगवान चावला

ईश्वर और धर्म में विश्वास

–चार्ल्स डार्विन

इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि मनुष्य का ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास शुरू से ही था। इसके विपरीत, ऐसे प्रमाण अवश्य ही मौजूद हैं कि कई कबीले ऐसे रहे हैं या अभी भी हैं जो ईश्वर के बारे में कुछ नहीं जानते। जिनकी भाषा में ईश्वर शब्द का कोई स्थान ही नहीं है। इस संपूर्ण ब्रह्मांड का कोई रचयिता और संचालक है या नहीं, यह एक अलग प्रश्न है; मैं केवल लोगों की आस्था की बात कर रहा हूँ। वैसे, अब तक अधिकांश उच्चस्तरीय बुद्धिजीवियों ने इस प्रश्न का उत्तर न में ही दिया है।

यदि हम 'धर्म' की अवधारणा में अमूर्त आध्यात्मिक शक्तियों में विश्वास को शामिल कर लें, तो मामला बिल्कुल अलग हो जाता है, क्योंकि यह विश्वास अविकसित देशों में व्यापक रूप से प्रचलित है। यह समझना कठिन नहीं है कि यह कैसे उत्पन्न हुआ। जैसे-जैसे कल्पना, आश्चर्य और जिज्ञासा, साथ ही थोड़ी-बहुत समझ विकसित हुई, यह स्वाभाविक था कि मनुष्य अपने आसपास घटित हो रही घटनाओं को समझने की इच्छा रखता था । उसने अपने अस्तित्व के बारे में भी कुछ अस्पष्ट धारणाएँ बनाईं, जैसा कि मैकलैनन लिखते हैं, ''उसने अपने चारों ओर फैले जीवन के विभिन्न जैविक रूपों, प्राकृतिक घटनाओं, पौधों और जानवरों के बारे में सोचा कि उन्हें सक्रिय करने वाली कोई शक्ति अवश्य होगी, मानो उसके भीतर कोई चेतना हो।'' टेलर के अनुसार, यह संभव है कि मनुष्य को तथाकथित आत्माओं के बारे में सपनों से कुछ संकेत मिले हों, क्योंकि हम देखते हैं कि आज भी जंगली मनुष्य वास्तविक और काल्पनिक प्रभावों के बीच अंतर नहीं कर पाता है। सपने में जो लोग या दृश्य वह देखता है, वे उसके सामने एक वास्तविकता की तरह प्रकट होते हैं, जबकि वास्तविकता में वे उसके पास नहीं होते। उसकी तथाकथित आत्मा उसे एक दूर स्थान की यात्रा पर ले जाती है, और जागने पर भी उसे वह सब कुछ याद रहता है जो उसने सपने में देखा था। लेकिन ऐसा लगता है कि उस समय तक मनुष्य के मन में जिज्ञासा, कल्पना और तर्क शक्ति आदि का पर्याप्त विकास नहीं हुआ था, इसलिए उसके सपनों ने उसे तथाकथित आत्माओं में विश्वास करने के लिए प्रेरित किया होगा। उस समय शायद उसकी स्थिति एक कुत्ते जैसी ही रही होगी। जंगली लोगों के प्राकृतिक शक्तियों या निर्जीव वस्तुओं, जिन्हें वे आत्माएँ कहते हैं, में विश्वास को मैं एक छोटे से उदाहरण से समझाऊँगा। गर्मी का दिन था। मेरा कुत्ता आँगन में लेटा हुआ था। थोड़ी दूरी पर, एक खुला छाता हल्की हवा से बार-बार हिल रहा था। ज़ाहिर है, अगर कोई दूसरा व्यक्ति छाते के पास खड़ा होता, तो कुत्ते ने इसकी ओर बिलकुल भी ध्यान नहीं देता। लेकिन क्योंकि वहाँ कोई नहीं था, इसलिए जब भी छाता हिलता, कुत्ता उस पर भौंकने लगता। मुझे लगता है कि छाते को हिलते हुए देखकर उसने अनजाने में यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि कोई अदृश्य सजीव शक्ति उसे हिला रही होगी। हर कुत्ते की तरह, वह उस जगह को अपना मानता था। छाते को हिलाने वाली उस तथाकथित सजीव शक्ति की उपस्थिति उसे अपने क्षेत्र पर अवैध अतिक्रमण लगती थी, और वह अपना गुस्सा ज़ाहिर करने लगा।

तथाकथित आत्माओं के अस्तित्व में विश्वास बहुत जल्द एक या एक से अधिक देवताओं में विश्वास का रूप ले लेता है। जंगली लोगों की देवताओं के बारे में धारणा उनके नैतिक विचारों पर आधारित होती है। उन्हें देवता स्नेही, प्रतिशोधी या किसी अन्य रूप में अपने समान ही प्रतीत होते हैं। हमारे **बीगल खोज अभियान** में शामिल तीन फिजी आदिवासी भी इसी तरह के विचार रखते थे। जब हमारे डॉक्टर ने नमूने लेने के लिए कुछ बत्तखों के बच्चों को मारा, तो उनमें से एक फिजीवासी ने कहा, ''ओह, मिस्टर बिन्नी।''

''तुमने बहुत बुरा किया है। एक बड़ा अपशगुन हो गया है। अब भारी बारिश, बर्फबारी और तूफानी हवाएं चलेंगी।'' ऐसा प्रतीत होता है कि वह मानव भोजन को खराब करने के दंड स्वरूप दैवीय शक्तियों के संभावित प्रकोप की भविष्यवाणी कर रहा था। उसके भाई ने एक बार एक जंगली आदमी को मार डाला था जिस पर क्रोध में आकर देवताओं ने तूफान खड़ा कर दिया था। भारी बारिश हुई और बर्फ गिरी। वह एक बत्तख के बच्चे को मारने की तुलना एक जंगली आदमी को मारने से करने पर बहुत भयभीत हो गया था। फिर भी मुझे यकीन है कि

फिजीवासी ऐसी किसी शक्ति को नहीं जानते थे जिसे हम ईश्वर कह सकें। उनके पास कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं थे। उनमें से एक, जेमी बंटन, गर्व से कहा करता था, ''उसके आस-पास कोई शैतान नहीं है।'' यह कथन महत्वपूर्ण है क्योंकि जंगली लोग अच्छी आत्माओं के अस्तित्व की तुलना में बुरी आत्माओं के अस्तित्व में अधिक विश्वास करते हैं।

धार्मिक निष्ठा एक उच्च कोटि की जटिल भावना है। इसमें सर्वोच्च पवित्र और रहस्यमय शक्ति के प्रति पूर्ण समर्पण, उसके प्रति गहरा प्रेम, उस पर निर्भरता का भाव, उसके प्रति श्रद्धा और सम्मान, उसके प्रति कृतज्ञता, भविष्य के लिए आशा और कई अन्य तत्व शामिल हैं। ऐसी जटिल भावनाओं का अनुभव विशेष प्रकार के बौद्धिक और नैतिक विकास के बिना संभव नहीं है। फिर भी, एक कुत्ते का अपने मालिक के प्रति प्रेम कुछ मायनों में ऐसी ही मानसिकता से तुलना की जा सकती है। उसमें मालिक के प्रति पूर्ण निष्ठा और विश्वास, उसके प्रति पूर्ण समर्पण का भाव, उसका भय और इससे संबंधित कई अन्य भावनाएँ होती हैं। कुछ समय की अनुपस्थिति के बाद मालिक के घर लौटने पर, कुत्ते का व्यवहार मालिक के प्रति वैसा नहीं होता जैसा कि उसके अन्य साथियों के प्रति होता है। मैं यह जोड़ना चाहूँगा कि बंदरों में भी यही स्थिति होती है, सिवाय इसके कि वे कुत्ते की तुलना में थोड़ी कम खुशी व्यक्त करते हैं। उनकी हर क्रिया में समानता का भाव झलकता है। प्रो. ब्रोबाक तो यहाँ तक कहते हैं कि कुत्ता अपने मालिक को ऐसे देखता है मानो वह तथाकथित 'ईश्वर' को देख रहा हो।

ये उच्चतर मानसिक शक्तियाँ, जिन्होंने पहले मनुष्य को अदृश्य आध्यात्मिक शक्तियों में विश्वास दिलाया और फिर निर्जीव वस्तुओं में भी आत्माओं के अस्तित्व में विश्वास दिलाया, उसे बहुदेववाद और अंततः एकेश्वरवाद की ओर ले गईं। ये शक्तियाँ उसे इस चक्र में तब तक उलझाए रखेंगी जब तक उसकी तर्कशील बौद्धिक शक्ति विभिन्न रीति-रिवाजों और अजीब अंधविश्वासों को त्यागकर उसे आगे नहीं ले जाती। इनमें से कुछ तो विचार करने में भी भयावह हैं, जैसे किसी रक्तपिपासु देवता को प्रसन्न करने के लिए मनुष्य की बलि देना या जादू-टोना करना। फिर भी, इन अंधविश्वासों पर विचार करना आवश्यक है क्योंकि यह हमें दिखाता है कि हम अपनी तर्कशील शक्ति के कितने ऋणी हैं या वैज्ञानिक विकास के माध्यम से संचित ज्ञान से मनुष्य को कितना लाभ हुआ है। सर जे. लुबॉक ने कहा है, ''किसी अज्ञात बुराई का भय, जो एक जंगली व्यक्ति के जीवन पर काले बादल की तरह मंडराता रहता है, उसकी सारी खुशियों को नष्ट कर देता है। इस बारे में जितनी भी बात की जाए वो कम पड़ेगी।'' इन तथाकथित सर्वोच्च शक्तियों के हाथों जो उत्पीड़न और यातनाएँ हमने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में झेली हैं या झेल रहे हैं, उनकी तुलना करने के लिए किसी अन्य क्षेत्र में उपयुक्त उदाहरण मिलना असंभव है।

नई देशभक्ति

वे आपको सबसे पहले कहेंगे
आप सोचना बंद कर दो।
आपका न सोचना देश के हित में है।

फिर यह बात
सोना, पेट्रोल, डीजल आदि जैसी जगहों पर चक्कर लगाती हुई।
आपके खाने-पीने की चीजों तक पहुंचेगी ।

कुछ भी न खाकर देशभक्ति साबित करने का प्रमेय
मामला अनसुलझा ही रहेगा।
बुद्धि सामने प्रकट होगी।
नई चुनौतियां
लेकिन आप पहले से ही
देश के हित में सोचना बंद कर दिया है।

चाहे ऐसा हो या न हो, वह दिन दूर नहीं है।
जब आपकी देशभक्ति को इस तरह चुनौती दी जाएगी।
अब जनता देश के लिए अपनी जान देकर यह साबित करेगी।

अब यही एकमात्र रास्ता बच सकता है।
जिससे नागरिक साबित कर सकें
आपकी सच्ची देशभक्ति

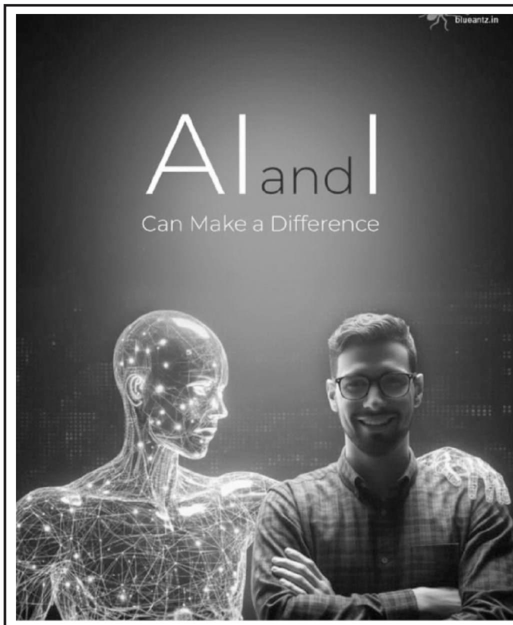
-विहान वैभव

कृत्रिम बुद्धिमत्ता : मानवता की सामूहिक बुद्धि की कहानी

–प्रशान्त मधुश्री

आजकल हर जगह ''आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस'' यानी कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) की चर्चा हो रही है। मोबाइल फोन, यूट्यूब, इंस्टाग्राम, गूगल मैप, चैटबॉट और ऑनलाइन खरीदारी – हर जगह AI का उपयोग दिखाई देता है। टीवी और सोशल मीडिया पर अक्सर यह दिखाया जाता है कि कुछ बड़ी कंपनियों या अमीर व्यापारियों ने दुनिया बदल दी। ऐसा लगता है मानो किसी एक व्यक्ति ने अचानक कोई जादुई तकनीक बना दी हो। लेकिन सच्चाई इससे बिल्कुल अलग है।

कोई भी वैज्ञानिक आविष्कार किसी एक व्यक्ति की संपत्ति नहीं होता। ज्ञान हमेशा समाज की सामूहिक मेहनत से बनता है। AI भी हजारों वैज्ञानिकों, शिक्षकों, छात्रों, मजदूरों, इंजीनियरों और समाज की पीढ़ियों की मेहनत का परिणाम है।



कल्पना कीजिए कि यदि प्राचीन मनुष्यों ने आग जलाना न सीखा होता, पहिया न बनाया होता, खेती न खोजी होती, तो आज की दुनिया कैसी होती? हर पीढ़ी ने कुछ नया सीखा और अगली पीढ़ी को दिया। इसी तरह ज्ञान आगे बढ़ता गया। गणित, विज्ञान, भाषा, चिकित्सा, बिजली, इंटरनेट और कंप्यूटर – ये सब किसी एक रात में नहीं बने। इनके पीछे सैकड़ों वर्षों का शोध और मेहनत है। AI की कहानी भी ऐसी ही है।

1930 और 1940 के दशक में वैज्ञानिक Alan Turing (एलन ट्यूरिंग) ने यह सवाल पूछा कि ''क्या मशीन सोच सकती है?'' उस समय न स्मार्टफोन थे, न इंटरनेट। फिर भी वैज्ञानिक यह समझने की कोशिश कर रहे थे कि क्या कंप्यूटर इंसानों की तरह सीख सकते हैं। बाद में John McCarthy (जॉन मैकार्थी) ने "Artificial Intelligence" शब्द का उपयोग किया। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में वैज्ञानिकों ने इस विषय पर दशकों तक काम किया। Geoffrey Hinton (ज्योफ्री हिंटन), Yann LeCun (यान लेकुन) और Yoshua Bengio (योशुआ बेंगियो) जैसे शोधकर्ताओं ने वर्षों तक न्यूरल नेटवर्क और मशीन लर्निंग पर शोध किया। कई बार लोगों ने कहा कि यह सब बेकार है, पैसा भी कम मिला, लेकिन उन्होंने काम जारी रखा। आज जिस AI को दुनिया नई क्रांति कह रही है, उसकी नींव उन वैज्ञानिकों ने बहुत पहले रख दी थी।

समाज में यह बात स्थापित करने की कोशिश की जा रही है कि हर नई चीज सिर्फ कंपनियाँ बनाती हैं। लेकिन सच यह है कि कंपनियाँ सामूहिक मेहनत से पैदा हुए ज्ञान से मुनाफा कमा रही है। जो ज्ञान पहले से विश्वविद्यालयों और वैज्ञानिक संस्थानों में विकसित किया जा चुका है। इंटरनेट सरकारी शोध परियोजनाओं से विकसित हुआ। मोबाइल फोन के पीछे भौतिकी और गणित का लंबा इतिहास है। GPS तकनीक वैज्ञानिक शोध और अंतरिक्ष कार्यक्रमों से आई। AI के पीछे गणित, सांख्यिकी, कंप्यूटर विज्ञान और न्यूरोसाइंस का दशकों का काम है। कंपनियाँ इन तकनीकों को उत्पाद बनाकर बेचती हैं, लेकिन मूल ज्ञान समाज की सामूहिक मेहनत से पैदा होता है।

यदि कोई छात्र आज गणित पढ़ता है, तो वह अकेले न्यूटन या आर्यभट्ट का ज्ञान नहीं पढ़ रहा होता। वह हजारों वर्षों की मानव सभ्यता की सीख को पढ़ रहा होता है। स्कूल की किताबें, पुस्तकालय, इंटरनेट, प्रयोगशालाएँ और विश्वविद्यालय

– ये सब समाज की सामूहिक बौद्धिक संपत्ति हैं। एक वैज्ञानिक अकेले काम नहीं करता। उसे पुराने वैज्ञानिकों का ज्ञान, शिक्षकों का मार्गदर्शन, समाज के टैक्स से चलने वाली प्रयोगशालाएँ और मजदूरों द्वारा बनाई गई मशीनें चाहिए होती हैं। इसलिए ज्ञान किसी एक व्यक्ति या कंपनी की जायदाद नहीं हो सकता। यह पूरी मानवता की साझा सम्पत्ति है।

ज्ञान और तकनीक पूरी मानवता की सामूहिक मेहनत से बनी है, तो उसका नियंत्रण कुछ बड़ी कंपनियों के हाथ में क्यों केंद्रित होता जा रहा है? आज बड़ी तकनीकी कंपनियाँ लोगों के डाटा, शोध, सॉफ्टवेयर और डिजिटल प्लेटफॉर्म पर अपना नियंत्रण बढ़ा रही हैं। वे विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक शोध से विकसित तकनीकों को निजी उत्पाद बनाकर मुनाफा कमाती हैं। इसका कारण पूंजीवादी व्यवस्था है जिसमें उत्पादन सामूहिक है लेकिन उत्पाद पे नियंत्रण निजी है।

वैज्ञानिक चिंतन हमें सिखाता है कि किसी भी तकनीक को केवल उसकी चमक से नहीं, बल्कि उसके सामाजिक प्रभाव से भी समझना चाहिए। तकनीक अपने आप में न अच्छी होती है, न बुरी। उसका असर इस बात पर निर्भर करता है कि उसका नियंत्रण किन लोगों के हाथों में है और उसका उपयोग किस उद्देश्य से किया जा रहा है। यदि विज्ञान और तकनीक पर समाज का नियंत्रण हो, तो उनका उपयोग जनता के जीवन को बेहतर बनाने के लिए किया जा सकता है। यदि विज्ञान और तकनीकी पर नियंत्रण केवल मुनाफा कमाने वाली शक्तियों के हाथ में केंद्रित हो जाए, तो वही तकनीक असमानता और शोषण को बढ़ाती है।

हमारे दौर की एक बड़ी सच्चाई यह है कि AI के बढ़ते उपयोग के कारण लोगों में नौकरियों को लेकर डर पैदा हो रहा है। कई कंपनियाँ ऐसे सॉफ्टवेयर और मशीनें इस्तेमाल कर रही हैं जो पहले इंसानों द्वारा किए जाने वाले काम को तेजी से करने लगी हैं। बैंक, कॉल सेंटर, फैक्ट्री, मीडिया, ट्रांसपोर्ट और यहाँ तक कि शिक्षा के क्षेत्र में भी AI का उपयोग बढ़ रहा है। इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि ढ्ढ हमारी दुनिया को बदल रहा है। लेकिन इस बदलाव को समझने के लिए केवल मशीनों को दोष देना ठीक नहीं है। वास्तविक प्रश्न तकनीक का नहीं, बल्कि उसके नियंत्रण का है। यदि AI का उपयोग समाज की जरूरतों के अनुसार हो, तो यह कठिन और दोहराए जाने वाले काम कम कर सकता है, शिक्षा और स्वास्थ्य को बेहतर बना सकता है और लोगों का श्रम हल्का कर सकता है। यदि इसका नियंत्रण केवल मुनाफा कमाने वाली कंपनियों के हाथ में होगा, तो AI तकनीक कर्मचारियों की छँटनी, निगरानी और काम का दबाव बढ़ाने का साधन बनेगी। इसलिए समस्या केवल AI नहीं है, बल्कि यह है कि AI का उपयोग किस उद्देश्य से और किसके हित में किया जा रहा है।

आज बड़ी कंपनियाँ और मीडिया प्रचार कर रहे हैं कि भविष्य पूरी तरह AI तय करेगा, मानो इंसानों की भूमिका धीरे-धीरे खत्म हो जाएगी। लेकिन वैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टि से देखें तो यह बात सही नहीं है। कोई भी तकनीक अपने आप समाज की दिशा तय नहीं करती। तकनीक केवल एक साधन होती है। उसका उपयोग कैसे होगा, यह समाज, सरकारों, संस्थाओं और आर्थिक शक्तियों द्वारा तय किया जाता है।

उदाहरण के लिए, बिजली की खोज ने दुनिया बदल दी, लेकिन बिजली का उपयोग कहाँ होगा – अस्पतालों में, स्कूलों में, कारखानों में या हथियार बनाने में – यह इंसानों ने तय किया। इंटरनेट ने ज्ञान को दुनिया भर में पहुँचाने की क्षमता दी, लेकिन उसी इंटरनेट का उपयोग शिक्षा के लिए भी हुआ और झूठे प्रचार तथा लोगों की निगरानी के लिए भी। यानी तकनीक अपने आप निर्णय नहीं लेती, निर्णय इंसान और समाज लेते हैं।

AI के साथ भी यही बात लागू होती है। यदि ढ्ढ का नियंत्रण केवल कुछ बड़ी कंपनियों का रहेगा, तो वे उसका उपयोग मुनाफा कमाने के लिए करेंगी। वे कर्मचारियों की संख्या में कटौती करेंगी, लोगों की निगरानी करेंगी और तकनीक को मुनाफे का साधन बनाएगी। यदि समाज, सरकारें, वैज्ञानिक संस्थान और जनता मिलकर तय करें कि ढ्ढ का उपयोग शिक्षा, स्वास्थ्य, खेती, वैज्ञानिक शोध और मेहनतकश लोगों का श्रम कम करने के लिए होगा, तो AI समाज के लिए लाभदायक बन सकती है।

इसलिए असली प्रश्न यह नहीं है कि ''AI क्या कर सकता है'', बल्कि यह है कि ''AI पर नियंत्रण किसका होगा?'' भविष्य AI तय नहीं करेंगी। भविष्य इस बात से तय होगा कि ज्ञान और विज्ञान पर अधिकार कुछ बड़ी कंपनियों का होगा या पूरी मानवता का।

वैज्ञानिक खोजों के लिए शहीद

–प्रेम मस्ताना

यह कहना कठिन है कि दर्शन या तर्कवाद की उत्पत्ति कब हुई, लेकिन ऐसा लगता है कि इसकी शुरुआत तब हुई जब मनुष्य ने अपने और दूसरों के बीच, हानि और लाभ के बीच अंतर को समझना शुरू किया। लेकिन इस प्रणाली को लगभग 2400 वर्ष पहले तीन यूनानी दार्शनिकों के कारण मान्यता मिली, जिनके समय में यह सार्वजनिक चर्चा का प्रमुख विषय बन गई। इनमें सुकरात और प्लेटो लगभग एक ही आयु के थे, और अरस्तू उनसे लगभग चालीस वर्ष छोटे थे।

देश में व्याप्त पाखंड और बुराइयों को देखकर सुकरात ने बड़े साहस और तर्क के साथ उनका खंडन करना शुरू किया। उनका मानना था कि किसी भी बात को आँख बंद करके स्वीकार करना गलत है। वे अपने तर्क से महान विद्वानों को भी निरउत्तर कर देते थे। कुछ विरोधियों ने उन्हें धर्म का गद्दार कहा और उनका बहिष्कार कर दिया। अदालत ने उन्हें मृत्युदंड दिया। उनके करीबी साथियों के लिए उनकी मृत्यु का कष्ट सहना बहुत कठिन था। उन्होंने सुकरात को जेल से छुड़ाने की योजना बनाई। लेकिन सुकरात ने कहा कि इस तरह मैं तो बच जाऊँगा, पर सत्य मर जाएगा। सत्य मेरे जीवन से अधिक महत्वपूर्ण है, जो जीवित रहना चाहिए, और उन्होंने सत्य से भागने के बजाय मृत्यु को गले लगा लिया।

प्लेटो सुकरात को अपना आदर्श मानते थे और उन्होंने अपना पूरा जीवन उनके साथ बिताया। सुकरात की मृत्यु के बाद, उन्होंने अपने सूक्ष्म विचारों का प्रसार करने के लिए विश्वभर की यात्रा की और कई पुस्तकें लिखीं। अरस्तू ने प्लेटो को अपना गुरु माना और बीस वर्षों तक उनसे शिक्षा प्राप्त की। अरस्तू ने राजनीति, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, कविता, भौतिकी, तत्वमीमांसा, पशु इतिहास आदि विषयों पर पुस्तकें लिखीं, जिन्हें अत्यंत प्रामाणिक माना जाता है।

अरस्तू की शिक्षाएँ, विचार और सत्य इतने लोकप्रिय थे कि यदि उनके शिष्यों को अदालत में गवाही देने के लिए बुलाया जाता, तो वे शपथ नहीं लेते थे। अरस्तू ने कहा था कि यदि अलग-अलग वज़न की दो वस्तुओं को एक ही समय पर ऊपर से गिराया जाए, तो भारी वस्तु पहले ज़मीन पर गिरेगी। कई शताब्दियों बाद गैलीलियो ने इसे गलत साबित कर दिया। वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों का यह सिद्धांत है कि जब कोई बात प्रमाणों के आधार पर सही या गलत साबित हो जाती है, तो वे उसे स्वीकार कर लेते हैं और आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन कर देते हैं, लेकिन धर्म या आध्यात्मिकता में ऐसी कोई गुंजाइश नहीं है। एक बार कोई बात कह दी जाए, तो उसे 'ईश्वरीय आदेश' मान लिया जाता है।

पोलैंड में जन्मे कोपरनिकस ने अपने अध्ययन में पाया कि आकाश में चंद्रमा, सूर्य, तारे आदि सभी वस्तुएँ हवा में


कोपरनिकस

गतिमान हैं और उनमें कोई जड़ या आधार नहीं है, इसलिए पृथ्वी भी उन्हीं की तरह हवा में गतिमान हो सकती है। आगे के अध्ययन में उन्होंने पाया कि सूर्य पृथ्वी से अधिक शक्तिशाली और विशाल है, इसलिए संभव है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती हो। जब वे इस विचार की सत्यता से पूरी तरह संतुष्ट हो गए, तो उन्होंने 1540 ईस्वी में घोषणा की कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। यह ईसाई धर्म की मान्यताओं और बाइबल में लिखी बातों के विरुद्ध था। परिणामस्वरूप, धर्म में हलचल मच गई और उनकी सभी रचनाएँ जब्त कर ली गईं। वे अपने कथन को सिद्ध करने के लिए और अधिक प्रमाण जुटा रहे थे, लेकिन तीन वर्ष के भीतर, 1543 ईस्वी में उनका निधन हो गया।

कोपरनिकस की मृत्यु के पाँच वर्ष बाद, जी. ब्रूनो का

जन्म इटली में हुआ। वे बड़े हुए और पहले चर्च के पादरी बने। लेकिन अपने स्पष्टवादिता, वाचालता और खुले विचारों के कारण वे इस पद के लिए उपयुक्त नहीं थे। इसलिए वे विदेश चले गए और कई देशों का भ्रमण किया। ब्रूनो से पहले, दर्शन और विज्ञान साथ-साथ चलते थे। लेकिन जब वैज्ञानिकों ने दूरबीन और सूक्ष्मदर्शी जैसे उपकरण बनाए और अपना अधिकांश ध्यान इस क्षेत्र पर केंद्रित किया, तो विज्ञान को दर्शन से अलग माना जाने लगा और वैज्ञानिकों ने दर्शन पर ध्यान देना बंद कर दिया। ब्रूनो का मत था कि धर्म पूरी तरह से तर्कहीन हैं।

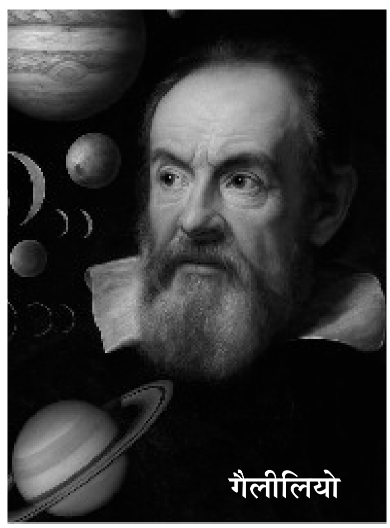
दर्शनशास्त्र के विषय में ब्रूनो लिखते हैं, ''दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हर बात को संदेह की कसौटी पर परखना चाहिए।'' वे किसी महान व्यक्ति के कहने मात्र से किसी बात पर विश्वास करने के पक्षधर नहीं थे, बल्कि परीक्षण के बाद ही उस पर विश्वास करने के पक्षधर थे। ईश्वर की अवधारणा उनके लिए कोई मायने नहीं रखती थी, इसलिए दक्षिणी यूरोप के पुजारी उनसे कहीं अधिक कठोर थे।


ब्रूनो

ब्रूनी ने लगभग तीस पुस्तकें लिखीं, जिनमें से अधिकतर दर्शनशास्त्र पर थीं। लगभग दस वर्षों तक उन्होंने खुले तौर पर कोपरनिकस के इस विचार का प्रचार किया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। इसके लिए पादरियों ने उन्हें विनस जेल में कैद कर लिया और उन पर मुकदमा चलाया। उन्हें रोम की एक अंधेरी काल कोठरी में आठ वर्षों तक कैद रखा गया।

एक जर्मन दार्शनिक, जो उनकी कैद के दौरान मौजूद थे, ने लिखा, ''ब्रूनो से कई बार पूछताछ की गई और पोप ने उन्हें दोषी घोषित कर दिया। उन्हें दो बार अपने बयान पर पुनर्विचार करने के लिए चालीस दिन का समय दिया गया, लेकिन उन्होंने पोप और पूछताछ करने वालों दोनों का दिमाग घुमा दिया। दो साल की कैद के बाद जब उन्हें रोम के गवर्नर के सामने पेश किया गया, तो ब्रूनो डरने के बजाय धमकी भरे लहजे में बोले, ''आप जो मुझे न्याय दे रहे हैं, आप मुझसे ज्यादा डरते हैं जो मुझे सजा दे रहे हैं, बजाय इसके कि मैं अपनी सजा भुगत रहा हूँ।''

ब्रूनो को अपने कथनों के पश्चाताप के लिए एक और सप्ताह का समय दिया गया। अंततः, उन्हें चबूतरे पर सूली पर चढ़ाया गया, लेकिन उन्होंने फिर से इनकार कर दिया। अंत में, उन्हें लकड़ी के क्रॉस से बांध दिया गया और उनकी जीभ काट दी गई। जब पादरियों ने उनसे दोबारा पूछा, तो उन्होंने अपना सिर घुमा लिया और उनकी बात सुनने से इनकार कर दिया, इसलिए उन्हें जिंदा जला दिया गया। जी. गैलीलियो, जी. ब्रूनो की तरह, इटली में ही पैदा हुए थे और ब्रूनो से सोलह वर्ष छोटे थे। जब वे पीसा विश्वविद्यालय में व्याख्याता थे, तब उन्होंने ऊँचाई से वस्तुएँ फेंकने के बारे में अरस्तू का कथन पढ़ा।


गैलीलियो

गैलीलियो को यह पसंद नहीं आया। अपनी बात साबित करने के लिए, उन्होंने हजारों लोगों की भीड़ के सामने पीसा की झुकी हुई मीनार की सातवीं मंजिल से सौ पाउंड और एक पाउंड की लोहे की गेंद फेंकी, जो एक साथ जमीन पर गिरीं।

गैलीलियो ने एक दूरबीन बनाई और उससे विनस के राजा को कई चंद्रमा, तारे आदि दिखाए। ब्रूनी की तरह, उन्होंने कोपरनिकस के विचारों का समर्थन किया और 1616 में प्रयोगात्मक रूप से इसे सिद्ध भी किया। चर्च ने उन्हें इस तरह के प्रचार करने से रोक दिया और वे 1630 तक चुप रहे। हालाँकि उन्होंने पोप को सब कुछ अपनी आँखों से दिखाया था, लेकिन पोप बाइबल के विपरीत किसी भी बात को कैसे सहन कर सकते थे? उन्हें रोम बुलाया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया। उन्हें

मानसिक यातना दी गई और उनसे यह स्वीकार करने को कहा गया कि उन्होंने जो कहा वह गलत था। बहुत दबाव के बाद, गैलीलियो जनता के सामने खड़े हुए और अपनी गलती स्वीकार की और भविष्य में वैज्ञानिक अनुसंधान का त्याग करने का बयान दिया। उन्हें घुटने टेकने को कहा गया और उन्होंने कहा, 'मैंने जो कुछ भी कहा वह झूठ है और बाइबल जो कहती है वह सत्य है।'

गैलीलियो ने ये बात कही, लेकिन उन्हें इसका बहुत अफ़सोस हुआ। उनका अंतरात्मा उन्हें कचोटता रहा और अंत में उन्होंने हिम्मत जुटाकर फिर से खड़े होकर कहा, ''मेरे शब्दों से धरती रुक नहीं सकती। यह अभी भी घूम रही है और घूमती रहेगी।'' फिर क्या हुआ, उन्हें जेल में डाल दिया गया। 1637 ईस्वी में उनकी आंखों की रोशनी चली गई और पांच साल बाद वहीं उनकी मृत्यु हो गई। उन्हें दफ़नाने तक की अनुमति नहीं दी गई, न ही कोई स्मारक बनाया गया। लेकिन आज दुनिया इस सच्चाई को स्वीकार करती है। अब चर्च ने भी गैलीलियो को माफ़ कर दिया है, यानी उसने अपनी गलती मान ली है, लेकिन अब इसका क्या फ़ायदा?

आज हम जिस दुनिया को देखते हैं, वह सैकड़ों या हजारों वर्षों के अनुभव से आकारित हुई है।

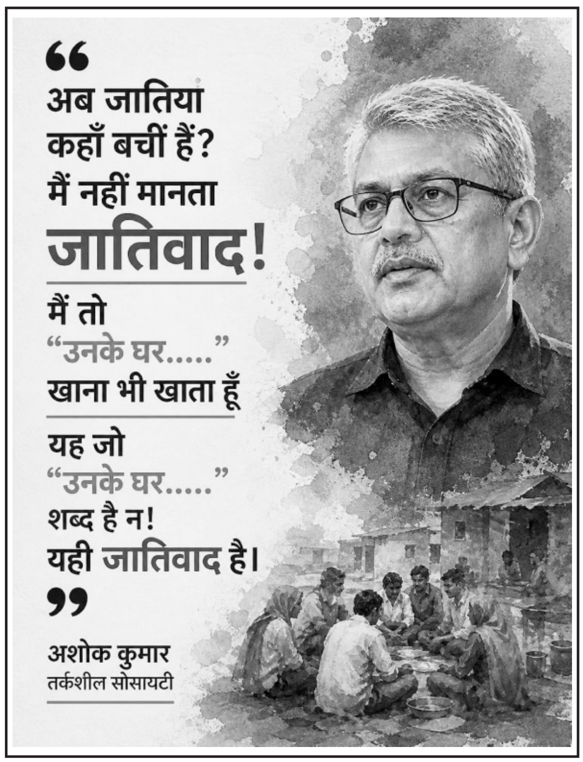
हजारों नहीं बल्कि लाखों विचारकों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने योगदान दिया है। मनुष्य के आगमन के बाद, लाखों वर्षों तक वह पेड़-पौधों और जानवरों की तरह ही एक जीवित प्राणी बना रहा। जो कुछ भी उसे मिलता, वह उसे खाकर जीवित रहता था; जो कुछ नहीं मिलता, वह मर जाता था। पेड़-पौधे आज भी इसी अवस्था में हैं। जानवर और पक्षी गर्मी और सर्दी से बचने और भोजन की तलाश में इधर-उधर भागते हैं, लेकिन मनुष्य पिछले दस हजार वर्षों से अपनी सारी ऊर्जा अपनी इच्छाओं को पूरा करने और अपने लिए हानिकारक चीजों को नष्ट करने में लगा रहा है।

इस प्रक्रिया में, उन्होंने हजारों साल पहले कागज बनाना सीखा, और फिर पेंसिल, कलम, स्याही और बॉलपॉइंट पेन बनाए गए। इसके बाद, प्रिंटिंग प्रेस ने टाइपराइटर से आगे बढ़कर कंप्यूटर जैसी तकनीक विकसित की। संभव है कि भविष्य में, मनुष्य का काम कागज के बिना, किसी और चीज से किया जाए।

लेकिन बिजली के बिना एक दिन भी जीना मुश्किल है। इसका मुख्य स्विच बंद कर देने से हम अठारहवीं सदी में पहुँच जाएँगे, जहाँ बेंजामिन फ्रैंकलिन पतंग की डोर से बादलों से बिजली पकड़ने की कोशिश कर रहे थे। अपने इस प्रयास को सफल बनाने के लिए गैलवानी और वोल्टा ने घर्षण से बिजली पैदा करने की कोशिश की और फिर हमें माइकल फैराडे का शुक्रिया अदा करना चाहिए, जिनके आविष्कार ने विभिन्न वैज्ञानिकों को इतनी सारी चीजें बनाने के लिए प्रेरित किया कि अब घरों में बिजली के उपकरणों के अलावा और कुछ नज़र नहीं आता।

आज भी वैज्ञानिक अनुसंधान निरंतर जारी है। इन महान वैज्ञानिकों ने मानव जीवन को सरल और आरामदायक बनाने के लिए अपने प्राण जोखिम में डाले हैं। अनुसंधान के दौरान कई लोगों ने अपनी जान गंवाई है। इसलिए हमें इन महान बलिदानों को याद रखना चाहिए। अपने जन्मदिन मनाने के बजाय, हमें इन महान वैज्ञानिकों के जन्मदिन और शहादत दिवस मनाने चाहिए। इन अवसरों पर वैज्ञानिक विचारों पर मंथन और प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए।

(स्रोतः पुस्तक 'किन्तु -परन्तु')



धन और इज्जत लूटने का काम करते हैं ओझा-तांत्रिक

-मनोवैज्ञानिक टिकेश कुमार

आज इक्कीसवीं सदी में विज्ञान और तकनीक ने मानव जीवन को अभूतपूर्व ऊंचाइयों तक पहुंचा दिया है। विज्ञान ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बुलंदियों को छुहा है। चिकित्सा, संचार, परिवहन और शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान ने क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं। इसके बावजूद समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी अंधविश्वास, तंत्र-मंत्र और पाखंड के जाल में फंसा हुआ है। यह विडंबना ही है कि आधुनिकता का दावा करने वाला समाज आज भी ओझाओं, तांत्रिकों और कथित चमत्कारी बाबाओं के सामने अपनी बुद्धि और विवेक को समर्पित कर देता है।

अंधविश्वास का प्रभाव केवल अशिक्षित लोगों तक सीमित नहीं है। आज पढ़े-लिखे, संपन्न और उच्च पदों पर बैठे लोग भी अनेक प्रकार के पाखंडों और अवैज्ञानिक मान्यताओं में विश्वास करते दिखाई देते हैं। कोई ग्रह-दोष के नाम पर हजारों रुपये खर्च करता है, कोई कुंडली दोष दूर कराने के लिए तांत्रिकों के चक्कर लगाता है, तो कोई जीवन की समस्याओं का समाधान चमत्कारों में खोजता है। इन सबका लाभ उठाकर ज्योतिषी, तांत्रिक और ढोंगी बाबा लोगों को मानसिक रूप से गुलाम बनाते हैं और उनका आर्थिक शोषण करते हैं। लोग अपनी मेहनत की कमाई इन पाखंडियों के चरणों में अर्पित कर देते हैं, लेकिन समस्याओं का वास्तविक समाधान खोजने का प्रयास नहीं करते।

व्यक्ति जब अपनी तर्कशक्ति का उपयोग करना बंद कर देता है, तब वह आसानी से किसी भी पाखंडी के प्रभाव में आ जाता है। यही कारण है कि अनेक लोग अपने परिवार सहित अंधविश्वास की दलदल में फंस जाते हैं। वे स्वयं तो भ्रमित होते ही हैं, साथ ही अपने बच्चों को भी उसी रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। बचपन से ही बच्चों के मन में भूत-प्रेत, ग्रह-दोष, चमत्कार और अवैज्ञानिक धारणाएं भर दी जाती हैं, जिससे उनके अंदर वैज्ञानिक सोच विकसित नहीं हो पाती।

देश में समय-समय पर ऐसे अनेक स्वयंभू धर्मगुरुओं और बाबाओं का पर्दाफाश हुआ है, जिन्होंने धर्म और अध्यात्म की आड़ में लोगों का शोषण किया। कई तथाकथित बाबा यौन शोषण, धोखाधड़ी और अन्य गंभीर अपराधों में दोषी पाए गए। इसके बावजूद समाज का एक वर्ग ऐसे लोगों के पीछे आंख मूंदकर चलता रहता है। यह स्थिति बताती है कि केवल शिक्षा प्राप्त कर लेना पर्याप्त नहीं है, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तार्किक सोच विकसित करना भी आवश्यक है।

हमारे समाज में अनेक रूढ़ियां और परंपराएं केवल इसलिए जीवित हैं क्योंकि लोग उन्हें बिना प्रश्न किए स्वीकार करते रहते हैं। परिवार में यदि कोई व्यक्ति इन मान्यताओं पर सवाल उठाता है, तो अक्सर उसका मजाक उड़ाया जाता है और उसका बहिष्कार कर दिया जाता है। उसे अधार्मिक, नास्तिक या परंपरा-विरोधी कहकर चुप कराने की कोशिश की जाती है। ऐसे वातावरण में तार्किक सोच रखने वाला व्यक्ति स्वयं को अकेला महसूस करने लगता है। इस संदर्भ में महान चिंतक राहुल सांस्कृत्यायन का कथन अत्यंत प्रासंगिक है कि लोग रूढ़ियों को इसलिए मानते हैं क्योंकि उनके सामने उन्हें तोड़ने वाले उदाहरण पर्याप्त मात्रा में नहीं होते। इसलिए समाज में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार करने वाले लोगों की आवश्यकता है।

धर्म के नाम पर कथाएं, चमत्कार और अवैज्ञानिक दावे प्रस्तुत करके लोगों को भ्रमित करने का कार्य भी लंबे समय से होता रहा है। कई कथावाचक और तथाकथित धार्मिक गुरु लोगों की भावनाओं का उपयोग करके भारी धनराशि अर्जित करते हैं। वे स्वर्ग-नर्क, पाप-पुण्य, ग्रह-नक्षत्र, भाग्य और चमत्कार जैसी अवधारणाओं का भय या लालच पैदा करके लोगों को प्रभावित करते हैं। जबकि इन दावों के समर्थन में कोई वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। समाज को यह समझना होगा कि किसी भी दावे को सत्य मानने से पहले उसके प्रमाणों की जांच करना आवश्यक है।

तंत्र-मंत्र और झाड़-फूंक का दावा करने वाले लोग स्वयं भी जब बीमार पड़ते हैं तो अस्पताल और डॉक्टरों की शरण लेते हैं। यदि वास्तव में उनके पास चमत्कारी शक्तियां होतीं, तो उन्हें चिकित्सा विज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह तथ्य स्वयं साबित करता है कि आधुनिक चिकित्सा और

वैज्ञानिक पद्धति ही समस्याओं के समाधान का विश्वसनीय माध्यम हैं। विज्ञान किसी विश्वास पर नहीं, बल्कि परीक्षण, प्रयोग और प्रमाण पर आधारित होता है।

कोरोना महामारी ने भी यह स्पष्ट कर दिया कि संकट के समय पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र और झाड़-फूंक लोगों को बचाने में सक्षम नहीं थे। महामारी से लड़ने में वैज्ञानिकों, डॉक्टरों, स्वास्थ्यकर्मियों और शोध संस्थानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। वैक्सीन, दवाइयों और चिकित्सा सुविधाओं ने करोड़ों लोगों की जान बचाई। इस अनुभव ने एक बार फिर सिद्ध किया कि मानवता की प्रगति का मार्ग विज्ञान और तर्क से होकर गुजरता है, न कि अंधविश्वास और पाखंड से।

समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास केवल व्यक्तिगत हित के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक प्रगति के लिए भी आवश्यक है। अंधविश्वास लोगों को विभाजित करता है, जबकि विज्ञान लोगों को जोड़ता है। वैज्ञानिक सोच व्यक्ति को प्रश्न पूछना, प्रमाण तलाशना और सत्य को स्वीकार करना सिखाती है। इससे समाज में समानता, न्याय और मानवता की भावना मजबूत होती है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के साथ-साथ वैज्ञानिक चेतना को भी बढ़ावा दिया जाए। बच्चों को बचपन से ही तर्क, विवेक और प्रमाणों के आधार पर सोचने की प्रेरणा दी जाए। समाज को ऐसे लोगों का सम्मान करना चाहिए जो रूढ़ियों और अंधविश्वासों को चुनौती देते हैं। जब लोग अपनी समस्याओं का समाधान विज्ञान, शिक्षा और सामाजिक सहयोग में खोजेंगे, तब पाखंडियों की दुकानें अपने आप बंद हो जाएंगी।

अंधविश्वास एक गंभीर सामाजिक समस्या है, लेकिन इसका अंत संभव है। जिस दिन समाज का बहुमतप वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाएगा, उस दिन शोषण, पाखंड और अज्ञानता का प्रभाव कम हो जाएगा। तब एक ऐसा समाज निर्मित होगा जहां इंसान की पहचान उसकी जाति, धर्म या अंधविश्वास से नहीं, बल्कि उसकी मानवता, तर्कशीलता और ज्ञान से होगी। यही एक प्रगतिशील, न्यायपूर्ण और बेहतर समाज की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम होगा।

अध्यक्ष, एंटी सुपरस्टीशन ऑर्गेनाइजेशन

उबासी क्यों आती है ?

उबासी (Yawning) आना शरीर की एक सामान्य प्रक्रिया है, यह शरीर में ऑक्सीजन बढ़ाने के लिए होती है और मस्तिष्क के तापमान को नियंत्रित करने और उसे ठंडा रखने में मदद करती है। हालांकि, लगातार या अत्यधिक उबासी आना स्लीप एपनिया, नार्कोलेप्सी, या हार्ट से जुड़ी बीमारियों का संकेत हो सकता है।

उबासी आने के मुख्य कारण :

1-थकान और नींद की कमी : पर्याप्त नींद न लेने या थके होने पर शरीर को अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जिससे उबासी (जम्हाई) आती है।

2-बोरियत (Boredom): किसी कार्य में रुचि न होने या सुस्ती महसूस होने पर मस्तिष्क को उत्तेजित करने के लिए उबासी आती है।

3-मस्तिष्क का तापमान : जब दिमाग थका हुआ और गर्म महसूस करता है, तो उबासी के माध्यम से ठंडी हवा अंदर जाकर खून के ज़रिये दिमाग को ठंडा करती है।

4-तनाव और चिंता : तनावपूर्ण स्थितियों में सांस लेने का तरीका बदलने से भी उबासी आ सकती है।

5-चिकित्सीय स्थितियाँ : स्लीप एपनिया (रात में सांस रुकना), नार्कोलेप्सी (अचानक नींद आना), या हाई ब्लड शुगर (हाइपोग्लाइसीमिया) भी बार-बार उबासी का कारण बन सकते हैं।

6-संक्रामक होना : अक्सर किसी दूसरे व्यक्ति को उबासी लेते देख या इसके बारे में पढ़कर भी उबासी आने लगती है।



इस्लाम और वैज्ञानिक सोच की नजर में नैतिकता

–प्रस्तुतकर्ता:- जसवंत मोहाली

पिछले अंक में हमने व्हाट्सएप ग्रुप पर चली बहस का पहला हिस्सा प्रकाशित किया था। इस चर्चा का दूसरा हिस्सा तर्कशील पथ के पाठकों के लिए प्रस्तुत है।

गुरमीत तर्कशील : धर्म नैतिकता बनाता है यह एक असत्य कथन है। नैतिकता कोई धार्मिक कृत्य नहीं और न ही सार्वभौमिक होता है। नैतिकता किसी भी समाज की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। एक देश और किसी काल की नैतिकता, भौतिकवादी परिस्थितियां बदलने से बदल जाती है। किसी समाज में एक विवाह करना नैतिक है किसी में बहु विवाह करना। विश्व भर में बनी नैतिकताओं का आधार अलग अलग और कहीं तो विरोधी भी हैं। असल में विज्ञान जीने का ही जरिया ही नहीं, जीने का नजरिया भी सिखाता है।

जुबेर : इस्लाम में नैतिकता का आधार भौगोलिक नहीं, सार्वभौमिक है। यह सच है कि मानव समाजों में कुछ आचरण स्थानीय रीति-रिवाजों से बदलते रहते हैं – लेकिन इस्लाम जिस ''अख़लाक़'' (नैतिकता) की बात करता है, वह स्थायी नैतिक मूल्यों पर आधारित है, जैसे=

* सच बोलना, • अन्याय का विरोध, • कमज़ोर की सहायता, • अमानतदारी, • जीवन की पवित्रता।

ये मूल्य किसी समय, भूगोल या संस्कृति के अनुसार नहीं बदलते। जो कि क़ुरआन स्पष्ट कहता है:

''हर क़ौम के लिए हमने एक पैग़म्बर भेजा, ताकि वे भलाई का हुक्म दें और बुराई से रोकें।'' (सूरह नहल 36)

अर्थात इस्लाम के अनुसार नैतिकता का मूल स्रोत ईश्वरीय मार्गदर्शन है जो समय से परे और मानव विवेक से ऊपर है।

इस्लाम में परिवर्तन (reform) का विरोध नहीं, बल्कि सुधार (islah) की निरंतर प्रक्रिया है।

मुहम्मद ? ने कहा:

''जिसने किसी बुराई को देखा, उसे अपने हाथ से रोके; अगर न हो सके, तो ज़बान से; और अगर इतना भी न हो सके, तो अपने दिल में नापसंद करे।''

(सहीह मुस्लिम)

विज्ञान यह नहीं बताता कि:

* किसी तकनीक का प्रयोग सदुपयोग होगा या विनाशकारी?

* झूठ बोलना बुरा क्यों है?

* निर्दोष की हत्या अन्याय क्यों है?

ये प्रश्न ''प्रयोगशाला'' नहीं, बल्कि विवेक और आस्था के क्षेत्र से जुड़े हैं।

नैतिक पतन और नैतिक उत्कर्ष का निर्धारण किसी प्रयोग से नहीं, बल्कि मूल्य से होता है और वह मूल्य इस्लाम में ईश्वर की ओर से आता है। बहरहाल मैं न धर्म (खासकर इस्लाम जिसका में अध्ययन करता हूँ) के विरोध में हूँ और न विज्ञान के क्योंकि मेरे लिए विज्ञान जीवन को बेहतर बनाने का माध्यम है, जबकि इस्लाम जीवन को अर्थ, दिशा और न्याय देने का।

गुरमीत तर्कशील :

मूल प्रश्न मानव के जीवन से जुड़ा है – क्या उसे जीने के लिए धर्मो की जरूरत है? क्या विज्ञान से वह प्रेरणा लेकर जी नहीं सकता? जबकि विज्ञान किसी भी सत्य को प्रयोग और तर्क से खोजता है जबकि धर्म घोषणाएं करता है कि किसी बात को इस लिए मानो कि यह उनकी धार्मिक किताब में कही गई है या ईश्वर या उसके दूत ने कही है। उसे स्वीकार करने वाले श्रद्धा, आस्था से जोड़ कर देखते रहते हैं। अगर कुछ गलत भी है तो भी इस लिए सत्य है क्योंकि यह धर्म की घोषणा है। यही मान कर उसके अनुसार जीते रहते हैं । वे प्रश्न खड़े करना,प्रयोग करना और तर्क करना नहीं चाहते।इतिहास में हम देख सकते हैं कि प्रश्न करने वालों को धर्मो के क्रूर शासकों ने उन्हें जीवित जलाया,फांसी दी, जेलों में डाल दिया। सुकरात, गैलीलियो, ब्रूनो, कॉपरनिकस, मंसुर अली आदि उदाहरण हैं।

आपने कहा है कि सच बोलना, अन्याय का विरोध, कमजोर की सहायता, ईमानदारी, जीवन की पविव्रता संस्कृति

और भूगोल के अनुसार नहीं बदलते यह सत्य है। लेकिन इन सब के लिए ईश्वर का मार्ग दर्शन काम करता है, यह असत्य कथन है। विज्ञान इन सभी जीवन मूल्यों की जड़ें विकास की प्रकिया में देखता है। बुनियादी नैतिक नियम समाज में किसी धर्म या ईश्वर की घोषणा से पैदा नहीं होते, बल्कि विकास की प्रकिया में जब मानव समूह को लगा कि अस्तित्व के लिए बुनियादी नियमों की आवश्यकता है तो ये विकसित हुए। इसी से शादी, प्रजनन , परिवार , समाज, देश , संसार बना ,क्योंकि इस की मानव को जरूरत बनी ना कि ईश्वरीय घोषणा से यह हुआ। जब आने वाले समय में विज्ञान जीवन के उन पहलुओं को भी समेटेगा, जो अछूते हैं, धर्म और ईश्वर की काल्पनिक धारणाएं गिरती जाएंगी। आज भी हम देख सकते है कि विज्ञान को जीने का नजरिया मानने वाले नास्तिक देश जैसे स्वीडन, नार्वे अपराध और जेलों से मुक्त हो रहे हैं, जबकि धर्मो की ज़हालत में जीने वाले देश मानवीय नैतिक मूल्यों से तो रिक्त हैं ही बर्बर भी हैं।

जुबेर :

आपकी बात में कुछ सच्चाई है कि समय के साथ विज्ञान ने मानव जीवन को अत्यंत सुविधाजनक और सुरक्षित बनाया है। बल्कि आज का युग तो तकनीक, तर्क और प्रयोग का युग है और इसमें कोई संदेह नहीं कि विज्ञान ने मानव सभ्यता को ऊँचाइयों पर पहुंचाया है। लेकिन विज्ञान मानवता को सुविधा देता है, धर्म उसे दिशा देता है। इस्लाम या किसी भी सच्चे धर्म ने ज्ञान या विज्ञान का विरोध नहीं किया। कुरआन का पहला शब्द ही ''इक़रा (पढ़ो)'' है जो मानवता के ज्ञान और चिंतन का उद्घोष है।

इस्लामिक इतिहास में अल-हैथम, अल-रज़ी, इब्न सीना, अल-ख्वारिज़्मी जैसे वैज्ञानिकों ने दुनिया को चिकित्सा, प्रकाश, गणित और खगोलशास्त्र की नींव रखी जो मुसलमान और वैज्ञानिक दोनों थे।

अल्लाह ने मनुष्य को ''फितरत'' (innate moral nature) दी, जो अच्छाई और बुराई में फर्क समझती है।

कुरआन कहता है: ''हमने मनुष्य को सही और गलत दोनों रास्ते दिखा दिए।'' (सूरा अल-बलद 90:10) इतिहास बताता है कि जब भी मनुष्य ने धर्म को दरकिनार किया –

तो कुछ ही पीढ़ियों में बल, लालच और अहंकार ने समाज को निगल लिया।

* यूनान की ''नैतिकता'' दर्शन में रही, व्यवहार में नहीं। सुकरात को खुद अपने समाज ने जहर देकर मार दिया।

* फ्रांसीसी क्रांति ने ''तर्क'' के नाम पर धर्म हटाया, लेकिन उसी तर्क से रक्तपात और अराजकता फैली।

* 20वीं सदी के नास्तिक शासन (Hitler, Stalin, Mao) ने 10 करोड़ से अधिक लोगों की हत्या की – बिना किसी ''ईश्वर के डर'' के। यानी जब नैतिकता को किसी ''उत्तरदायित्व'' से नहीं जोड़ा गया, तो वह सत्ता और स्वार्थ की दासी बन गई।

इस्लाम कहता है: ''अगर तुम्हारा दुश्मन भी अन्याय का शिकार हो, तो उसके लिए भी न्याय करो।'' (कुरआन 5:8) ''हमने तुम्हें जातियों और क़बीलों में बाँटा ताकि तुम एक-दूसरे को जानो, न कि घृणा करो।'' (कुरआन 49:13)

विज्ञान वस्तुओं की व्याख्या कर सकता है, पर मूल्यों की नहीं। विज्ञान यह नहीं बता सकता कि ''क्यों सत्य बोलना सही है'' या ''क्यों निर्दोष की हत्या गलत है।'' ये प्रश्न भौतिक नहीं, आध्यात्मिक और नैतिक हैं। और इन्हीं के उत्तर देने के लिए धर्म आवश्यक है।

यहाँ एक बात और स्पष्ट करदूं कि जो पहले भी कर चूका हूँ कि धार्मिक ग्रंथ का काम विज्ञान समझाना नहीं और न ही विज्ञान का काम समाज का बहतरीन निर्माण है बल्कि मैं ये समझता हूँ कि यह दोनों ज़रूरी और एक दूसरे के बिना अधूरे हैं।

गुरमीत तर्कशील :

एक समय था जब कहा जाता था कि विज्ञान कुछ नहीं है, धर्म ही सब कुछ है। समय बदला। फिर विज्ञान ने धर्म के रहते विपरीत परिस्थितियों में अपनी जगह बनाई। कहा जाने लगा धर्म और विज्ञान दोनों का मकसद इंसानी जीवन को बेहतर बनाना है यानि विज्ञान धर्म का ही पूरक है।

अब विज्ञान आगे निकल चुका, धर्मो को अपनी काल्पनिक दुनियां की जड़ें हिलती नजर आ रही है, क्योंकि विज्ञानवादियों की संख्या ज्यादा होने लगी है। आज विश्व में तीसरे नंबर पर विज्ञानवादी पहुंच गए हैं और यह संख्या लगातार बढ़ रही दुनिया के सभी खुशहाल देश नास्तिकता और विज्ञानवादियों से भरते जा रहे हैं। चीन, जापान, उतर कोरिया,

चेक गणराज्य, स्वीडन आदि देशों में तो कईयों में नास्तिकों की संख्या 90त्न तक पहुंच गई है। लोगों को समझ आ गया है कि धर्मो का झुनझुना बजाने का कोई लाभ नहीं। मनुष्य ईश्वर केंद्रित होने की बजाय मानववादी बन रहा। उसका जीवन धर्मो से संचालन की बजाए विज्ञान से संचालित होता जा रहा है। बहुत से यूरोपीय देशों में पूजास्थल या तो खंडर बन गए है या अन्य स्थानों जैसे होटल आदि में बदल गए है। एक हंसी वाली बात ये है कि कई यूरोपीय देशों में धर्म स्थान लोगों की घटती संख्या के कारण बिक गए और हमारे देश के धर्मवादियों ने इन्हें खरीद लिया है।

प्यू रिसर्च सेंटर (Pew Research Center) की एक रिपोर्ट के अनुसार, 2020 तक दुनिया में लगभग 1.9 अरब लोग ऐसे थे जिनका कोई धार्मिक संबंध नहीं था। यह वैश्विक आबादी का लगभग 24% है। आने वाले समय में यह आबादी बढ़ेगी ,कट्टरवादी धर्मो के देशों में भी लोग नास्तिक होने की घोषणाएं करने लगे हैं, भले ही कुछ लोगों को कट्टरवादियों के हाथों मानवता और विज्ञान के लिए शहीद होना पड़ा है। बंगला देश में 2015 में कट्टर धर्म वादियों ने फैसल आरिफिन दीपन को शहीद कर दिया था। उन पर आरोप लगा कि वे नास्तिकता का प्रचार करते है। बंगलादेश में 2013 से 2016 के बीच बहुत से विज्ञानवादियों को निशाना बनाया गया था। भारत में भी कट्टर धर्मवादियों ने डाक्टर दाभोलकर, कामरेड गोविंद पानसरे, डाक्टर कलबुर्गी को शहीद कर दिया है। डाक्टर शेख को पाकिस्तान में सन 2000 में विज्ञानवादी होने पर जेल में डाल दिया गया। जिसके लिए भारत समेत अन्य यूरोपीय देशों के विज्ञानवादियों ने भारी दबाव पाकिस्तान सरकार पर बनाया और उन्हें हो चुकी फांसी की सजा से मुक्त करके रिहा किया गया।

मानवता की जीत

दिल्ली की एक व्यस्त सड़क पर स्थित एक होटल में देर शाम अचानक आग लग गई। देखते ही देखते धुआँ पूरे भवन में फैल गया। होटल में ठहरे लोग घबराकर मदद के लिए पुकारने लगे। आग इतनी तेजी से फैली कि कई लोग ऊपरी मंजिलों पर फँस गए।

होटल के पास ही रहने वाले कुछ मुस्लिम युवक शाम को अपनी दुकान बंद करके अपने घर लौटने की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने जब लोगों की चीख-पुकार सुनी तो बिना समय गंवाए होटल की ओर दौड़ पड़े। आग और धुएँ का खतरा होने के बावजूद उन्होंने अपनी जान की परवाह नहीं की। उन्होंने ने अपनी गद्दों की दुकान से गद्दे उठाए और होटल के पास जल्दी से बिशा दिए और जो लोग होटल की इमारत से छलांग लगा रहे थे गद्दों के कारण उनकी जान बच सकी।

युवकों ने आसपास के लोगों की मदद से रस्सियों और सीढ़ियों का इंतज़ाम किया। कुछ युवक होटल के भीतर घुसे और बुजुर्गों, महिलाओं तथा बच्चों को सुरक्षित बाहर निकालने लगे। धुएँ से दम घुटने के बावजूद वे बार-बार अंदर जाते और लोगों को बाहर लाते रहे।

एक युवक ने अपने चेहरे पर गीला कपड़ा बाँधा और एक कमरे में फँसे परिवार को बाहर निकाला। दूसरे युवक ने एक वृद्ध व्यक्ति को अपनी पीठ पर उठाकर नीचे पहुँचाया। जब तक दमकल विभाग पहुँचा, तब तक वे दर्जनों लोगों की जान बचाने में मदद कर चुके थे।

आग पर काबू पाने के बाद लोगों ने उन युवकों का धन्यवाद किया। लेकिन उनका जवाब बहुत सरल था-

''हमने कोई बड़ा काम नहीं किया। मुसीबत में इंसान की मदद करना हमारा फ़र्ज़ है।''

अगले दिन अख़बारों में उनकी बहादुरी की चर्चा हुई। लोगों ने महसूस किया कि धर्म, जाति और भाषा से ऊपर उठकर मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है। उन युवकों ने यह साबित कर दिया कि संकट के समय पहचान केवल एक होती है- इंसानियत।

सच्ची महानता दूसरों की सहायता करने में है। जब लोग एक-दूसरे की मदद के लिए आगे आते हैं, तब मानवता की सबसे सुंदर तस्वीर सामने आती है।

भविष्य में रोबोट

-भगीरथ

बुजुर्गों की देखभाल व उनके रोजमर्रा के कामों में मदद के लिए तैयार किए जा रहे हैं खास रोबोट, मिलेगी राहत स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक ऐसे रोबोट्स पर काम कर रहे हैं जो बुजुर्गों को चलने-फिरने, शौच, नहाने, कपड़े पहनने, सामाजिक संपर्क बनाने या घरेलू काम करने में मदद कर सके। दुनिया में रोबोट्स के प्रति नजरिया बदल रहा है। कभी सुरक्षा के लिए खतरनाक माने गए रोबोट्स अब मददगार के रूप में देखे जा रहे हैं, खासकर बुजुर्ग आबादी के लिए। स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी के विशेषज्ञ अमेरिकी का बुजुर्ग आबादी की मदद के लिए ऐसे रोबोट्स विकसित कर रहे हैं जो उनकी रोजमर्रा के कामों में मदद कर सकें।

1 अप्रैल 2026 को प्रकाशित स्टेनफोर्ड की एक रिपोर्ट में स्टेनफोर्ड रोबोटिक्स सेंटर के कार्यकारी निदेशक स्टीव कजिंस कहते हैं, ''हाइड्रोलिक जैसे हाथ वाले शुरुआती रोबोट्स खतरनाक थे। पहले 40 वर्षों तक रोबोट को सुरक्षा पिंजरों के पीछे रखा जाता था। उन्हें मजबूत और सटीक बनने के लिए डिजाइन किया गया था, न कि इंसानों के साथ रहने के लिए। सुरक्षा प्राथमिकताओं में शामिल ही नहीं थी।'' हम अब एक अलग युग में जी रहे हैं, जहां ड्राइवरलेस कारें और डिलीवरी रोबोट शहर की सड़कों पर चलते हैं और अपनी कृत्रिम समझदारी से अपना काम करते हुए इंसानों से उचित दूरी बनाए रखते हैं। कजिंस का मानना है कि हम एक और परिवर्तन के कगार पर हैं, जहां रोबोट केवल लोगों से बचने की समझ ही नहीं रखेंगे, बल्कि हमारे व्यक्तिगत जीवन में हमारे साथ बहुत नजदीक शारीरिक रूप से काम करने की क्षमता भी विकसित कर लेंगे। घरेलू रोबोट का युग अब निकट है।

रिपोर्ट के अनुसार, संयुक्त राज्य अमेरिका एक वृद्ध होती आबादी वाला देश है। 2050 तक 65 वर्ष और उससे अधिक आयु के अमेरिकियों की संख्या 82 मिलियन तक पहुंचने का अनुमान है, जो 2022 की तुलना में 40 प्रतिशत से अधिक वृद्धि है। 2030 तक पहली बार अमेरिका के इतिहास में 65 वर्ष से अधिक आयु वालों की संख्या 18 वर्ष से कम आयु वालों से अधिक होने की उम्मीद है। नए सेवानिवृत्त लोगों की संख्या नए कामगारों से अधिक होगी और साथ ही उपयुक्त आवास की उपलब्धता पर अतिरिक्त दबाव होगा। इन हालात में ऐसे रोबोट जो लोगों को चलने-फिरने, शौच, नहाने, कपड़े पहनने, सामाजिक संपर्क बनाने या घरेलू काम करने में मदद कर सकें, वे घर पर बुढ़ापा बिताने का एक बेहतर अवसर प्रदान हैं। कजिंस कहते हैं, ''जब हम घरेलू रोबोटिक्स की बात करते हैं, तो वास्तव में हम ऐसे रोबोट की बात करते हैं जो वृद्धावस्था और विकलांगता में सहायता करें।'' दशकों तक स्वास्थ्य और वृद्धावस्था पर शोध करने वाली प्रोफेसर एबी किंग कहती हैं जनसांख्यीय दबाव का एक सकारात्मक पहलू यह है कि इससे सोच और निवेश ऐसे तरीकों पर केंद्रित हो रहे हैं जो भविष्य के वरिष्ठ नागरिकों की मदद करेंगे। वे कहती हैं, ''बेबी बूमर्स के लिए जो कुछ भी विकसित किया जा रहा है, वह हर अन्य पीढ़ी के लिए एक बेहतरीन संपत्ति साबित होगा।''

रोबोट के संदर्भ में उन्हें ऐसे उपकरणों की उम्मीद है जो स्वतंत्रता और सामाजिक जुड़ाव को बनाए रखें, ताकि जीवन के साथ-साथ स्वास्थ्य भी लंबे समय तक बना रहे। वह कहती हैं, ''जैसे-जैसे लोग बूढ़े होते हैं, 'एजेंसी' बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है, ताकि हमें महसूस हो कि हम अपने जीवन के मालिक हैं और हम खुद को असहाय महसूस न करें।'' कजिंस कहते हैं कि उम्र बढ़ने के साथ हममें से कई लोगों को भी शारीरिक चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। 75 वर्ष या उससे अधिक आयु के लगभग 46 प्रतिशत अमेरिकी किसी न किसी विकलांगता की रिपोर्ट करते हैं, जो 35 से 64 वर्ष आयु वर्ग की तुलना में लगभग चार गुना अधिक है। रोबोट हमें इन परिस्थितियों के अनुकूल होने में मदद कर सकते हैं। कजिन्स कहते हैं, ''बेबी बूमर्स अब 80 वर्ष के हो रहे हैं और उनमें से कई उम्र के साथ विकलांगता का सामना करेंगे। देखभाल वह महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या है जिसे रोबोटिक्स को हल करना होगा।''

रास्ता दिखाएंगे, सावधान करेंगे

रोबोटिक सेंटर में रोबोटिक इंजीनियर मिशेल

बाल्डानाडो इस मुद्दे को व्यवसायिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि शोध के नजरिए से देखती हैं। उनका मानना है कि इसका व्यावसायीकरण होने में ज्यादा समय नहीं लगेगा। वह कहती हैं, ''यह कल्पना वास्तविक है कि आने वाले कुछ वर्षों में अगली पीढ़ी का आउटडोर वॉकिंग कंपैनियन रोबोट उपलब्ध हो सकता है।'' मिशेल एक ऐसे रोबोट की कल्पना करती हैं जो सिर्फ कुत्ते जैसी प्यारी दिखावट तक सीमित न हो, बल्कि उससे कहीं ज्यादा सक्षम हो। वह रोबोटिक्स सेंटर के एक प्रमुख प्रोजेक्ट स्टेनफोर्ड ओल्डर एडल्ट रोबोटिक्स (एसओएआर) का नेतृत्व कर रही हैं, जिसका उद्देश्य ऐसे रोबोट विकसित करना है जिनकी क्षमताएं कम दृष्टि वाले लोगों की मदद करने वाले गाइड डॉग्स जैसी हों। मिशेल और उनकी टीम ऐसे कंपैनियन रोबोट बनाना चाहती है जो रास्ता दिखा सकें, सड़क पर ऊबड़-खाबड़ सतह के बारे में चेतावनी दे सकें, शारीरिक सहारा प्रदान कर सकें और साथ निभा सकें। साथ ही यदि उपयोगकर्ता की चाल अस्थिर लगे तो उसे सतर्क भी कर सकें।

कपड़े पहनाएंगे रोबोट्स

मकैनिकल इंजीनियर प्रोफेसर एलीसन ओकामुरा की रुचि ऐसे छोटे, खास काम के लिए बनाए गए रोबोट्स में है, जो इंसानों की मदद करें लेकिन उनकी नकल न करें। उदाहरण के लिए कुछ वैज्ञानिक ऐसे रोबोटिक हाथ पर काम कर रहे हैं जो लोगों को कपड़े पहनाने में सक्षम हों। लेकिन ओकामुरा की लैब कपड़ों को ही नए तरीके से सोच रही है। उनकी लैब का एक प्रोजेक्ट ऐसे कपड़े डिजाइन करने पर काम कर रहा है जो खुद-ब-खुद जुड़ने वाले पैनलों और ऑटोमैटिक जिपर से बने हों। यह तकनीक खास तौर पर उन लोगों के लिए फायदेमंद हो सकती है जिन्हें गठिया जैसी समस्या है। ओकामुरा ''सॉफ्ट रोबोटिक्स'' की बड़ी समर्थक हैं यानी ऐसे रोबोट जो लचीले, खिंचने योग्य और हल्के पदार्थों से बने होते हैं, जो शरीर के अनुसार ढल जाते हैं और पारंपरिक सख्त रोबोटिक हिस्सों की तुलना में अधिक कोमलता से सहारा देते हैं। वह कहती हैं, ''मेरे मिशन का एक हिस्सा लोगों को यह सोचने के लिए प्रेरित करना है कि रोबोट क्या होता है। सही काम के लिए सही रोबोट डिजाइन करना जरूरी है।''

('डाउन-टू-अर्थ' से साभार)

दिलचस्प जीव टार्डिग्रेड



एक स्वस्थ मनुष्य के शरीर का तापमान 37 डिग्री सेल्सियस होता है। जब शरीर का तापमान 36 डिग्री सेल्सियस से कम और 42 डिग्री सेल्सियस से अधिक होता है, तो मनुष्य का जीवित रहना मुश्किल हो जाता है। सामान्य जीव 45 डिग्री सेल्सियस से अधिक के शरीर के तापमान पर जीवित नहीं रह सकते। लेकिन जीव जगत में, जहां जीवों के आकार, आकृति और आवास में कई हैरान करने वाली बातें हैं, वहीं चरम परिस्थितियों में जीवित रहने वाले जीवों के भी कई उदाहरण हैं। चरम परिस्थितियों में जीवन के प्रति लोगों की रुचि तब जागी जब 25 जून, 2025 को भारतीय अंतरिक्ष यात्री सुभानशु शुक्ला नासा के कैनेडी अंतरिक्ष केंद्र से अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन के लिए रवाना हुए। वैज्ञानिक उपकरणों के साथ, सुभानशु ने टार्डिग्रेड नामक सूक्ष्मजीव के नमूने भी लिए। टार्डिग्रेड के नमूने लेने का उद्देश्य अंतरिक्ष की कठोर परिस्थितियों में इस जीव के जीवित रहने की स्थितियों का अध्ययन करना था। यह जीव अत्यधिक कम बाहरी तापमान (-272 डिग्री सेल्सियस) और अत्यधिक उच्च तापमान (149 डिग्री सेल्सियस), अत्यधिक कम और अत्यधिक उच्च दबाव, तीव्र विकिरण और हवा और पानी की अनुपस्थिति जैसी चरम स्थितियों में जीवित रह सकता है। यह कैसे होता है, यह शोध का विषय है। अंतरिक्ष में इस जीव पर प्रयोग किए गए ताकि यह पता लगाया जा सके कि कौन से प्रोटीन या रासायनिक परिवर्तन इस जीव को बचाते हैं, मनुष्यों के लिए उनके क्या उपयोग हैं, आदि। टार्डिग्रेड लगभग आधा मिलीमीटर लंबे, चार पैरों वाले जीव होते हैं। ये अक्सर नम, खुले स्थानों में, ब्रायोफाइटा नामक पौधों के बीच पाए जाते हैं।

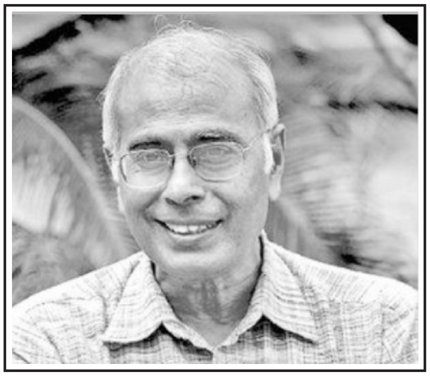
-विश्वकांत

तर्कशील आंदोलन के राष्ट्रीय नायक : डॉ. नरेंद्र दाभोलकर

–रामस्वर्ण लक्खेवाली

डॉ. नरेंद्र दाभोलकर भारत के राष्ट्रीय तर्कशील आंदोलन के तेजस्वी सितारे हैं। उन्होंने अपना जीवन तर्कशील आंदोलन को समर्पित कर दिया। अपने गृह राज्य महाराष्ट्र की विरासत की रक्षा करते हुए, उन्होंने अपने क्षेत्र में चल रहे सामाजिक सुधार आंदोलनों का निष्ठापूर्वक अनुसरण किया। जातिवाद, सामाजिक असमानता, अज्ञानता, अंधविश्वास और स्त्री-भेदभाव के विरुद्ध आंदोलनों के नायकों संत तुका राम, डॉ. भीमराव अंबेडकर, महात्मा ज्योति राव फुले और माता सावित्री बाई फुले के अधूरे कार्यों को पूरा करने के लिए वे तर्कशीलता के प्रबल समर्थक बने।

डॉ. दाभोलकर पेशे से डॉक्टर थे। उन्होंने 1989 में महाराष्ट्र अंध श्रद्धा निर्मूलन समिति की स्थापना की, जिसका उद्देश्य वैज्ञानिक जागरूकता फैलाकर समाज से अंधविश्वास, अज्ञानता और कर्म-संबंधी रूढ़ियों को दूर करना था। संगठन से जुड़े निष्ठावान नेताओं के साथ मिलकर उन्होंने राज्य भर में जागरूकता अभियान चलाए ताकि समाज को भ्रमों से मुक्त किया जा सके। इन अभियानों में उन्होंने चमत्कारों का पर्दाफाश, गणेश प्रतिमा अभियान, सत्य शोधक विवाह, पशु बलि का विरोध, प्रदूषण मुक्त त्योहार, जाति पंचायतों का विरोध, ज्योतिष पर सर्वेक्षण, मानसिक रोगों के प्रति जागरूकता और वैज्ञानिक जागरूकता के लिए तर्कशील साहित्य का प्रचार किया। लगभग तीन दशकों तक उन्होंने लोगों को जागरूक किया और उन्हें अपने संगठन से जोड़ा।



उन्होंने अपने संगठन के उद्यमी सदस्यों की सहायता से इन चमत्कारों के पीछे के वैज्ञानिक कारणों को सरल और स्पष्ट तरीके से समझाया। उन्होंने सत्य शोधक विवाह अभियान के माध्यम से युवाओं को संगठन से जोड़ा ताकि विवाह कर्म-भेद, दहेज, अनावश्यक खर्च और जातिवाद से मुक्त हो सकें। राज्य भर के ज्योतिषियों को चुनौती दी कि वे भविष्य बताने और भविष्यवाणी करने के नाम पर लोगों को लूटने वाले ज्योतिषियों और तांत्रिकों का पर्दाफाश करें। उन्होंने जाति आधारित पंचायतों द्वारा लिए गए अमानवीय निर्णयों का विरोध किया और महाराष्ट्र में महात्मा ज्योति और फुले के समतावादी समाज का झंडा बुलंद किया। मानसिक रोगों के खिलाफ जागरूकता अभियानों के माध्यम से, उन्होंने कथित भूतों के नाम पर लोगों को लूटने और गुमराह करने वाले पुजारियों का पर्दाफाश किया। उन्होंने वैज्ञानिक चेतना के प्रसार के लिए तर्कशील साहित्य को लोगों और शिक्षण संस्थानों तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण कार्य किया। अंधविश्वासों, कर्म-संबंधी नियमों और भ्रमों को दूर करने के लिए डॉ. दाभोलकर ने स्वयं मराठी भाषा में एक दर्जन से अधिक पुस्तकें लिखीं। इनका अंग्रेजी और हिंदी में अनुवाद हुआ और देश-विदेश में इन्हें व्यापक पाठक वर्ग मिला। उन्होंने निर्मूलन समिति के तर्कशील चेतना अभियान के अंतर्गत कई अन्य लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित करवाईं और उन्हें जनमानस तक पहुंचाया। डॉ. दाभोलकर के नेतृत्व में अंध श्रद्धा निर्मूलन समिति द्वारा हजारों प्रतियों में प्रकाशित पत्रिका 'वार्ता पार्थ' ने हर घर में चेतना का द्वार खोलना शुरू किया। उनके इस विचार और कर्म अभियान ने तर्कशील चेतना के प्रसार को एक नए स्तर पर पहुंचाया।

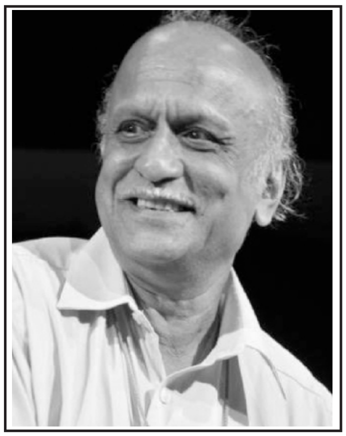
डॉ. नरेंद्र दाभोलकर ने अपने जीवनकाल में विभिन्न जागरूकता अभियानों के तहत हजारों जनसभाएं कीं। वे 18 वर्षों तक प्रसिद्ध मराठी प्रगतिशील साप्ताहिक पत्रिका साधना के संपादक रहे, जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तर्कशील और सामाजिक सुधारों से संबंधित संवेदनशील मुद्दों को उठाने के लिए जानी जाती है। उन्होंने अपने संगठन के माध्यम से अंधविश्वासों और तथाकथित बाबाओं, तांत्रिकों के शोषण को समाप्त करने के लिए 18 वर्षों तक लगातार अंधविश्वास-विरोधी कानून बनाने का अभियान चलाया, जिसे उनकी शहादत के बाद विधानसभा में पारित होने के बाद कानून का रूप दिया गया। यह कानून 20 दिसंबर 2013 को महाराष्ट्र में लागू हुआ।

20 अगस्त 2013 को सुबह पुणे में हिंदू सांप्रदायिक तत्वों ने उनकी गोली मारकर हत्या कर दी थी। उनकी स्मृति में प्रत्येक वर्ष 20 अगस्त को राष्ट्रीय वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य दिवस मनाया जाता है।

तर्कवादी लेखक एवं विचारक : डॉ. एम. एम. कलबुगी

–रामस्वर्ण लक्खेवाली

डॉ. मल्लेचप्पा मदिवालप्पा कलबुर्गी कर्नाटक के प्रतिभाशाली विद्वानों, इतिहासकारों और कन्नड़ साहित्य के चुनिंदा लेखकों में से एक थे। वे अपनी अटूट तर्कशीलता, प्रगतिशील सोच और उच्च गुणवत्ता वाले शोध कार्यों के लिए जाने जाते हैं। वे एक प्रख्यात शोध लेखक थे जिन्होंने भारतीय साहित्य, इतिहास और समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार के लिए काम किया। उन्होंने अपने जीवनकाल में 103 पुस्तकें और 400 से अधिक लेख लिखे। वे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक और प्रगतिशील समाज के हिमायती थे।



वैज्ञानिक जागरूकता के लिए काम करें

उन्होंने भारतीय साहित्य, इतिहास और समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार के लिए जीवन भर महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने समाज में व्याप्त अंधविश्वास, कर्म-संबंधी मान्यताओं और रूढ़िवादी मूल्यों के विरुद्ध आवाज उठाई। इतिहास का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि सामाजिक और ऐतिहासिक शोध का उद्देश्य केवल अतीत की सराहना करना ही नहीं, बल्कि अतीत के वास्तविक तथ्यों को उजागर करके वर्तमान को सही दिशा देना भी है।

साहित्य की तार्किक व्याख्या

डॉ. कालबुर्गी ने साहित्य के तर्क को समझाते हुए 12वीं शताब्दी के प्रख्यात समाज सुधारक महात्मा बसवेश्वर के लिखित साहित्य का गहन अध्ययन किया और इसे अंधविश्वास-विरोधी तर्क आंदोलन घोषित किया। उन्होंने तथ्यों के आधार पर सिद्ध किया कि महात्मा बसवेश्वर का आंदोलन वैदिक रीति-रिवाजों, जाति व्यवस्था और मूर्ति पूजा के विरुद्ध एक तार्किक विद्रोह था। इसी के कारण उस काल में समाज में वैज्ञानिक चेतना का युग प्रारंभ हुआ।

चेतना सेमिनार

विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के साथ-साथ, डॉ. कालबुर्गी ने सैकड़ों सार्वजनिक कार्यक्रमों और सेमिनारों में भी भाग लिया। इन व्याख्यानों में उन्होंने मूर्ति पूजा और अंधविश्वासों को निरर्थक अनुष्ठान बताया। उनके ये विचार छात्रों और आम जनता को वैज्ञानिक सोच से जोड़ने में सहायक सिद्ध हुए।

डॉ. कलबर्गी के शोध, अध्ययन और व्यवहार के अनुसार, विज्ञान केवल प्रयोगशालाओं तक सीमित नहीं है। बल्कि, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का वास्तविक कार्य समाज, इतिहास और धर्म को तर्क के मानदंडों पर परखना है।

उन्होंने कर्नाटक में बनने वाले अंधविश्वास-विरोधी कानून का पुरजोर समर्थन किया था। एक बुद्धिमान और वैज्ञानिक चेतना के अगुआ तथा एक प्रख्यात लेखक का ऐसा कृत्य सांप्रदायिक ताकतों को असहनीय लगा। इसके फलस्वरूप, 30 अगस्त 2015 को 77 वर्ष की आयु में हिंदू फासीवादी उनके आवास पर पहुंचे और उनकी गोली मारकर हत्या कर दी। उनकी शहादत के बाद, वैज्ञानिक चेतना का आंदोलन एक जन आंदोलन में तब्दील हो गया। साथ ही, इसने यह भी साबित कर दिया कि किसी व्यक्ति का कत्ल किया जा सकता है, उसके विचारों का नहीं।

विचारों की लोकप्रियता

आनंद पटवर्धन की डाकूमैंटरी फिल्म उनके जीवन के संघर्ष को दर्शाती है, साथ ही गौरी लंकेश, गोविंद पानसरे और डॉ. नरेंद्र दाभोलकर जैसे प्रख्यात विचारकों के योगदान को भी प्रस्तुत करती है। देश के तीन प्रमुख प्रकाशन समूहों, तुलिका बुक्स, पेरुमल मुरुगन पब्लिशिंग हाउस और देशभिमानी बुक हाउस ने पानसरे, डॉ. दाभोलकर और डॉ. कालबुर्गी की स्मृति में 'बुकशेल्फ' नामक एक लघु फिल्म बनाई है, जिसमें उनके अमूल्य योगदान को दर्शाया गया है।

नियो कॉस्मिक दुनिया (Neo-Cosmic World)

नियो कॉस्मिक दुनिया एक ऐसा आधुनिक और भविष्यवादी विचार है, जिसमें ब्रह्मांड (कॉस्मोस) की नई समझ, उन्नत तकनीक और मानव सभ्यता का अद्भुत संगम दिखाई देता है। ''नियो'' का अर्थ है 'नया', और ''कॉस्मिक'' का संबंध ब्रह्मांड से है। इस प्रकार नियो कॉस्मिक दुनिया का मतलब है - एक ऐसी नई ब्रह्मांडीय दुनिया, जहाँ विज्ञान, अंतरिक्ष और मानव जीवन एक नई ऊँचाई पर पहुँच चुके हों।



इस दुनिया में मानव केवल पृथ्वी तक सीमित नहीं रहता, बल्कि अन्य ग्रहों, तारों और आकाशगंगाओं तक अपनी पहुँच बना चुका होता है। यहाँ अंतरिक्ष यात्रा सामान्य हो जाती है और लोग विभिन्न ग्रहों पर बसने लगते हैं। मंगल, चंद्रमा और अन्य ग्रहों पर मानव बस्तियाँ बस चुकी होती हैं। यह दुनिया पूरी तरह से उन्नत तकनीकों जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), रोबोटिक्स और अंतरिक्ष विज्ञान पर आधारित होती है।

नियो कॉस्मिक दुनिया में ऊर्जा के स्रोत भी बदल जाते हैं। पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों की जगह सौर ऊर्जा, तारों की ऊर्जा और अन्य ब्रह्मांडीय स्रोतों का उपयोग किया जाता है। इससे पर्यावरण प्रदूषण समाप्त हो जाता है और जीवन अधिक संतुलित और सुरक्षित बनता है। यहाँ विज्ञान का उपयोग केवल विकास के लिए नहीं, बल्कि प्रकृति के संरक्षण के लिए भी किया जाता है।

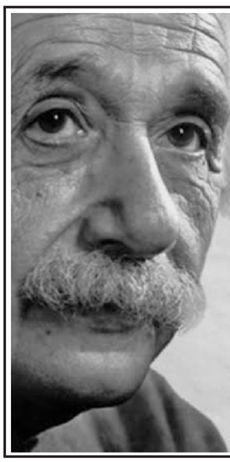
इस दुनिया में संचार प्रणाली अत्यंत विकसित होती है। लोग प्रकाश की गति से भी तेज संचार कर सकते हैं। एक ग्रह से दूसरे ग्रह तक संदेश भेजना कुछ ही सेकंड का काम बन जाता है। वर्चुअल रियलिटी और होलोग्राम तकनीक के माध्यम से लोग एक-दूसरे से ऐसे जुड़ते हैं जैसे वे आमने-सामने बैठे हों।

नियो कॉस्मिक दुनिया में शिक्षा और ज्ञान का स्तर भी अत्यधिक उन्नत होता है। यहाँ पारंपरिक स्कूलों की जगह डिजिटल और अनुभवात्मक शिक्षा प्रणाली होती है, जहाँ विद्यार्थी सीधे अंतरिक्ष और विज्ञान के प्रयोगों से सीखते हैं। ज्ञान केवल पुस्तकों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वास्तविक अनुभव के माध्यम से प्राप्त किया जाता है।

सामाजिक दृष्टि से यह दुनिया अधिक समानता और सहयोग पर आधारित होती है। यहाँ जाति, धर्म और राष्ट्र की सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं और पूरी मानवता एक परिवार की तरह रहती है। सभी लोग मिलकर ब्रह्मांड की खोज और विकास में योगदान देते हैं। इस प्रकार यह दुनिया ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की भावना को साकार करती है।

हालाँकि, नियो कॉस्मिक दुनिया के कुछ चुनौतियाँ भी हो सकती हैं। जैसे कि नई तकनीकों का दुरुपयोग, अंतरिक्ष में संसाधनों की होड़, और मानवता की मूल भावनाओं का कमजोर होना। इसलिए यह आवश्यक है कि विज्ञान और तकनीक के साथ-साथ नैतिक मूल्यों का भी विकास किया जाए।

अंत में, नियो कॉस्मिक दुनिया एक ऐसा सपना है जो मानव की जिज्ञासा, कल्पना और वैज्ञानिक प्रगति का प्रतीक है। यह हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि भविष्य में हम कहाँ तक पहुँच सकते हैं। यदि हम सही दिशा में प्रयास करें, तो यह कल्पना एक दिन वास्तविकता बन सकती है और मानव सभ्यता को एक नई पहचान दे सकती है।



''हर शख्स जीनियस है लेकिन अगर आप एक मछली को पेड़ पर चढ़ने की काबिलियत के हिसाब से आकेंगे तो मछली सारी उम्र यही सोचती रहेगी कि वो बेवकूफ है।''

अल्बर्ट आइंस्टीन

दवात में भूत

–बूटा सिंह वाक्फ

लगभग चार दशक पुरानी बात है। उस समय मैं दसवीं कक्षा का छात्र था। कातक माह की सुहावनी शाम ढल रही थी। हमेशा की तरह मेरा परिवार कपास चुनने खेतों में गया हुआ था। मुझे शाम को खेतों में पहुँचकर कपास तौलना होता था। फिर कपास की गांठों को बैलगाड़ी पर लादकर घर लाना होता था। यह काम मैं रोजाना करना था। उस दिन भी मुझे एक घंटे के लिए खेतों में इसी काम के लिए जाना था। इस समय मैं आँगन में बैठा अपनी पाठ्यक्रम की किताब में मग्न था। अचानक, टिक–टिक, ठुक–ठुक की आवाज़ ने मेरा ध्यान भटकाने की कोशिश की। पहली बार मैंने इस आवाज़ को नज़रअंदाज़ किया और पढ़ना जारी रखा। थोड़ी देर बाद, वही टिक–टिक, ठुक–ठुक की आवाज़ फिर आई। मैंने ध्यान से देखा और पाया कि यह आवाज़ संदूकों वाले कमरे से आ रही थी। अब यह आवाज़ लगातार आ रही थी। मैं उठा और कमरे के दरवाज़े तक पहुँचा। मैंने कमरे का आधा खुला दरवाज़ा पूरी तरह खोल दिया। लेकिन अब मुझे कोई आवाज़ सुनाई नहीं दे रही थी। मैं कुछ देर तक वहीं खड़ा रहा, आवाज़ दोबारा सुनने का इंतज़ार करता रहा। कुछ पल बीतने के बाद भी कोई आवाज़ नहीं आई। मैं वापस लौट आया। मैं बिस्तर पर बैठ गया और अपनी किताब दोबारा खोली। मैंने अभी पढ़ना शुरू ही किया था कि कमरे से वही आवाज़ फिर से मेरे कानों में पड़ी। मेरे चेहरे पर हैरानी और घबराहट के मिले–जुले भाव थे। मैं जल्दी से उठा और कमरे के दरवाज़े तक पहुँचा। जैसे ही मैं दरवाज़े पर पहुँचा, आवाज़ फिर से बंद हो गई। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि आखिर क्या बात है...? आखिरकार, मैंने कमरे में रखे संदूक को और उसके नीचे चारों ओर ध्यान से देखा। मैंने सोचा कि शायद वहाँ कोई पक्षी या जानवर तो नहीं बैठा जो ऐसी आवाज़ कर रहा हो। काफी देर तक जाँच करने के बाद भी मुझे वहाँ कुछ ऐसा नहीं मिला जिससे यह आवाज़ आ रही हो।

पूरी तरह संतुष्ट होने के बाद, मैं वापस आकर बिस्तर पर बैठ गया। मेरी आँखें और कान अभी भी कमरे पर टिके हुए थे, इस उम्मीद में कि आवाज़ फिर से सुनाई देगी। लेकिन काफी देर तक कोई आवाज़ नहीं आई। मैंने फिर से पढ़ना शुरू कर दिया। मेरा ध्यान अभी भी कमरे की ओर ही था। थोड़ी देर बाद, टिक–टिक की आवाज़ फिर से आने लगी। अब यह पहले से थोड़ी तेज़ लग रही थी। मैं डर और चिंता के मिले–जुले असर में फँस गया था। मेरे मन में कई अच्छे–बुरे विचार आने लगे। डर बढ़ता ही जा रहा था। अचानक, विज्ञान शिक्षक के शब्द मेरे मन में आ गए, 'दुनिया में कोई भूत–प्रेत नहीं होते। सब मन का भ्रम है।' वे अक्सर हमें अंधविश्वासों के बारे में बताया करते थे। कुछ महीने पहले, गाँव में लगे तर्कशील मेले में, तर्कशील मैंबरों ने अंधविश्वासों, भूतों और तथाकथित संतों का पर्दाफाश किया था। इन सभी बातों को याद करके, मैं एक बार फिर हिम्मत जुटा पाया। मैं उठा और पास पड़ी छड़ी उठाई और उसे कसकर पकड़े हुए दरवाजे तक पहुँच गया। आवाज फिर से बंद हो गई थी। मैं दरवाजे के पीछे छिपकर खड़ा रहा। मैं फिर से आवाज आने का इंतजार करने लगा। काफी देर बाद, आवाज फिर से आने लगी। मेरा अनुमान सही था। यह आवाज संदूक के ऊपर से आ रही थी। मैंने अपने हाथों में सामान भरे हुए ही संदूक की छत की ओर देखा। कमरे में आ रही हल्की रोशनी में मैंने देखा कि संदूक पर टेढ़ा पड़ा स्याही की कांच की दवात हिल रही थी। वह बार–बार संदूक की छत से टकरा रही थी, जिससे आवाज आ रही थी। मैंने हिम्मत जुटाई और संदूक के पास गया। छड़ी की मदद से मैंने दवात को नीचे जमीन पर फेंक दिया। मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। मैंने भूत को दवात में पकड़ लिया था।

दरअसल, यह एक खाली स्याही की दवात थी जिसका ढक्कन कहीं खो गया था। कुछ दिन पहले, मैंने इसे डिब्बे के ऊपर रख दिया था, इस डर से कि कहीं यह टूट न जाए। एक चूहे का सिर उसमें फंसा हुआ था। जब भी चूहा अपना सिर दवात से बाहर निकालने की कोशिश करता, दवात संदूक की छत से टकराकर आवाज़ करती। यहाँ तक कि जब दवात नीचे गिर गई, तब भी चूहे का सिर बाहर नहीं निकला। मुझे उसे दवात की कैद से छुड़ाने का कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। फिर मैंने सावधानी से दवात को चूहे समेत उठाया। मैं लटके हुए

चूहे समेत दवात को जानवरों के बाड़े में ले गया और उसे गोबर के ढेर पर फेंक दिया। गोबर के पास पड़ी एक ईंट से टकराते ही कांच की दवात टूट गई और चूहा बच निकला। वह तेज़ी से भागा और गहरे बिल में छिप गया। इस तरह मैंने दवात में फंसे चूहे को आज़ाद कर दिया। मुझे अक्सर यह घटना याद करके हंसी आती है और मैं अपने दोस्तों को इसके बारे में बताकर उन्हें खुश कर देता हूँ।

संपर्क : 98762-24461

वास्तव में सच क्या था ?

वह सांप्रदायिक भावनाओं का फायदा नहीं उठा सका

जिस प्रकार राजनीतिक दल और नेता लोगों की धार्मिक भावनाओं को भड़काकर वोट बटोरतें हैं और पुजारी व धर्मगुरु धार्मिक आस्था पैदा करके खूब पैसा कमाते हैं, उसी प्रकार कुछ बुरे लोग सांप्रदायिक भावनाएं भड़काकर अपना प्रभाव जमाने और दूसरे धर्मों के लोगों को ब्लैकमेल करने की कोशिश करते हैं। मेरठ के नकुल गुर्जर ने भी कुछ ऐसी ही स्कीम बनाई थी। लेकिन उसकी योजना उल्टी पड़ गई और वह हीरो बनते- बनते अपराधी बन गया।

नकुल गुर्जर विश्व हिंदू परिषद नामक सांप्रदायिक संगठन का स्थानीय नेता है। इस दुष्ट मानसिकता वाले नकुल गुर्जर ने अपनी एक करीबी दोस्त, भावना को दो मुस्लिम लड़कों, जीशान और शावेज को फंसाने में मदद करने के लिए तैयार किया, ताकि वह उन्हें ब्लैकमेल कर उनसे पैसे वसूल सके।

इन दोनों लड़कों में से जीशान एक एजेंसी चलाता है जो घरेलू काम करने वाली लड़कियों को काम मुहैया कराती है। नकुल ने किसी और के ज़रिए जीशान को इस लड़की का फ़ोन नंबर भेजा कि उसे काम की ज़रूरत है। जीशान के लिए यह एक आम बात थी। इसलिए स्वाभाविक था कि उसने भावना को फ़ोन किया और बताया कि जागृति विहार कॉलोनी में एक परिवार को काम करने वाली लड़की की ज़रूरत है। भावना ने हाँ कह दी। भावना को उस परिवार से मिलाने के लिए जीशान और उसका दोस्त शावेज़ उसे अपनी कार में उस परिवार के पास लेके जा रहे थे, तभी रास्ते में पहले बनी योजना के अनुसार विश्व हिंदू परिषद के कार्यकर्ताओं ने उन्हें घेर लिया और चिल्लाने लगे कि यह 'लव जिहाद' का मामला है और वे मासूम लड़की को फँसाकर ले जा रहे हैं।

नकुल गुर्जर और उसके साथियों ने इसे प्रेम जिहाद का मामला बनाकर अपना नाम चमकाने की योजना बनाई थी और दूसरी ओर, मुस्लिम लड़कों पर दबाव डालकर वे बलात्कार के मामले को खत्म करने के लिए उनसे कम से कम 10 लाख रुपये की उगाही करने वाले थे।

लेकिन जब मामला पुलिस के पास पहुंचा, तो पुलिस को पूरी कहानी पर संदेह होने लगा क्योंकि इस मामले का मुख्य साजिशकर्ता नकुल हाल ही में एक सामूहिक बलात्कार के मामले में जमानत पर रिहा हुआ था।

पुलिस जांच- जब पुलिस ने लड़की से सख्ती से पूछताछ की, तो उसने बताया कि यह सारा षड्यंत्र नकुल गुर्जर ने रचा था। उसने लड़की से कहा था कि अगर वह जीशान और शावेज को फंसाने में मदद करेगी, तो वह उसे पैसे देगा और नौकरी भी दिलवाएगा। यह लड़की भावना बुलंदशहर की रहने वाली है और डेढ़ साल से नकुल के संपर्क में थी।

लड़की ने यह भी स्वीकार किया कि उसने कार में बैठने से पहले नकुल को कार की फोटो और लोकेशन भेजी थी ताकि विश्व हिंदू परिषद के उसके साथी कार का पीछा कर सकें। नकुल के निर्देश पर उसने पुलिस को बताया था कि उसकी उम्र 16 साल है ताकि मुस्लिम लड़कों के खिलाफ नाबालिग से बलात्कार के सख्त प्रावधान लागू किए जा सकें। लेकिन जब स्कूल सर्टिफिकेट से लड़की की उम्र की जाँच की गई तो पता चला कि वह 19 साल की थी। बाद में नकुल गुर्जर को भी गिरफ्तार कर लिया गया। अब ये झूठे आरोप लगाने वाले जेल में हैं और दोनों मुस्लिम लड़कों को पुलिस ने रिहा कर दिया है। **(स्रोत : द अबज़रबर) 2 जून 2026**

पेशकश : राजपाल सिंह

जिज्ञासा

महिलाओं के दाढ़ी क्यों नहीं होती?

महिलाओं में सामान्यतः दाढ़ी नहीं होती क्योंकि उनके शरीर में पुरुषों की तुलना में हार्मोन अलग मात्रा में बनते हैं। दाढ़ी और मूंछ उगाने में मुख्य भूमिका टेस्टोस्टेरोन नामक हार्मोन की होती है, जो पुरुषों में अधिक मात्रा में पाया जाता है। किशोरावस्था के बाद यही हार्मोन चेहरे पर घने बाल उगने में मदद करता है।

महिलाओं के शरीर में भी थोड़ी मात्रा में टेस्टोस्टेरोन होता है, लेकिन उसमें एस्ट्रोजन हार्मोन अधिक होता है, इसलिए उनके चेहरे के बाल बहुत हल्के और कम दिखाई देते हैं। यही कारण है कि महिलाओं के चेहरे की त्वचा सामान्यतः मुलायम दिखती है।



कुछ महिलाओं में हार्मोन असंतुलन, आनुवंशिक कारण या कुछ बीमारियों के कारण चेहरे पर अधिक बाल आ सकते हैं। इसे सामान्य चिकित्सीय स्थिति माना जाता है। इसलिए दाढ़ी का होना या न होना मुख्य रूप से शरीर के हार्मोन और आनुवंशिक संरचना पर निर्भर करता है।

इंसान के मरने के बाद भी कुछ समय तक उसके बाल क्यों बढ़ते रहते हैं ?

हमारे सिर और शरीर के दूसरे हिस्सों पर बाल होते हैं। सिर पर बालों की संख्या लगभग 2 लाख होती है और वे एक महीने में लगभग आधा इंच बढ़ते हैं।

शरीर पर बालों का जो हिस्सा दिखाई देता है, उसे 'शाफ़्ट' कहते हैं। बालों की तीन परतें होती हैं – क्यूटिकल, कॉर्टेक्स और मेडुला। बालों का जो हिस्सा त्वचा के अंदर होता है, उसे 'जड़' कहते हैं। हर जड़ एक 'हेयर फ़ॉलिकल' (बालों की थैली) के अंदर होती है। बालों के सबसे पिछले हिस्से को 'बल्ब' कहते हैं। यह उन रक्त वाहिकाओं से जुड़ा होता है, जो ज़रूरत के हिसाब से बालों को खून पहुँचाती हैं। फ़ॉलिकल के साथ ही तेल बनाने वाली ग्रंथियाँ – 'सिबेशस ग्लैंड्स' – भी होती हैं, जो बालों को चिकना और नम रखती हैं। इसी वजह से बालों में चमक होती है। हर बाल कोशिकाओं से बना होता है। जैसे-जैसे कोशिकाएँ आपस में जुड़ती जाती हैं, बाल फ़ॉलिकल से आगे की ओर बढ़ते जाते हैं। जब कोई इंसान मर जाता है, तब भी उसके बाल कुछ समय तक बढ़ते रहते हैं, क्योंकि इंसान की मौत के तुरंत बाद कोशिकाएँ नहीं मरतीं। ये कोशिकाएँ तब तक काम करती रहती हैं, जब तक उनमें ऊर्जा बची रहती है। जब तक ये कोशिकाएँ काम करती रहती हैं, बाल भी बढ़ते रहते हैं। जब ऊर्जा खत्म हो जाती है और कोशिकाएँ मर जाती हैं, तो बालों का बढ़ना भी रुक जाता है।

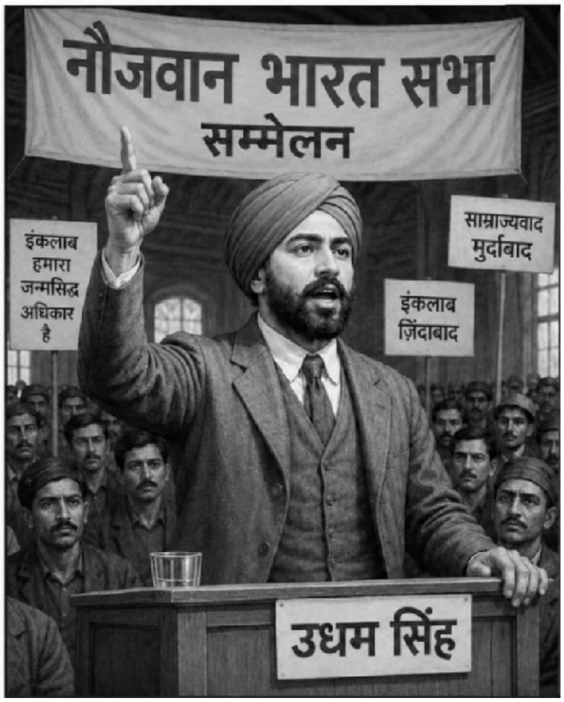
महिलाओं की आवाज सुरीली क्यों होती है?

महिलाओं की आवाज सामान्यतः पुरुषों की तुलना में अधिक पतली, मधुर और सुरीली सुनाई देती है। इसका मुख्य कारण उनके स्वरयंत्र (वोकल कॉर्ड्स) और हार्मोन होते हैं। महिलाओं के वोकल कॉर्ड्स पुरुषों की तुलना में छोटे और पतले होते हैं, इसलिए उनकी आवाज की आवृत्ति (पिच) अधिक होती है। अधिक पिच वाली आवाज कानों को अक्सर कोमल और मधुर लगती है।

किशोरावस्था में पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन हार्मोन बढ़ने से उनका स्वरयंत्र बड़ा हो जाता है और आवाज भारी हो जाती है, जबकि महिलाओं में यह परिवर्तन कम होता है। इसी कारण उनकी आवाज अपेक्षाकृत मुलायम बनी रहती है।

हालाँकि हर महिला की आवाज सुरीली हो, यह जरूरी नहीं है। आवाज का स्वर व्यक्ति की आनुवंशिक बनावट, भाषा, अभ्यास, स्वास्थ्य और बोलने के तरीके पर भी निर्भर करता है। संगीत का अभ्यास करने वाली महिलाओं की आवाज और अधिक मधुर लग सकती है।

***



''इंकलाब का अर्थ है विदेशी खूनी जबड़ों से मुक्ति। लूट और उस व्यवस्था का अंत जिसने अमीरों को और अमीर और गरीबों को गरीबी के गड्डों में धकेलने पर मजबूर किया। साम्राज्यवादी व्यवस्था के कारण लाखों मज़दूर, रोटी, कपड़ा मकान शिक्षा और चिकित्सा जैसे बुनियादी जरूरतों से वंचित हुए हैं। ऐसा कौन सा पत्थर दिल इंसान है जिसका खून मज़दूरों और किसानों की बेबसी देखकर न खौलता हो ? कहर है यारो। जो अपनी ज़िंदगी और खून से पूंजीवाद के महल बनाता है, वह खुद रात को भूखे पेट आसमान की खुली छत के नीचे सोए। ऐसी व्यवस्था को राख क्यों नहीं कर दिया जाया? अब इंकलाब, इंकलाब के कगार पर खड़ा है। हम करोड़ों लोग विदेशी आग में जल रहे हैं, अगर हम अपने 'भविष्य' के मालिक खुद बन जाएं, तो नतीजा इंकलाब होगा और यह इंकलाब हमारी आजादी का गवाह होगा।''

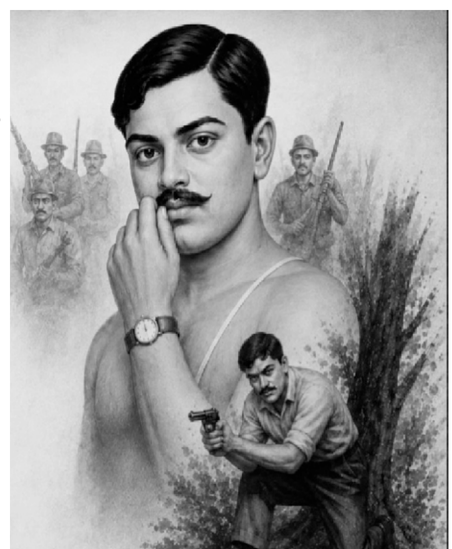
उधम सिंह ने कहा था,

''स्वतंत्रता की नींव इंकलाब है। गुलामी के विरुद्ध क्रांति मनुष्य का कर्तव्य है। यही मानवता का आदर्श है। जो राष्ट्र समर्पण स्वीकार करके अपना सिर झुका लेता है, वह मृत्यु को गले लगाता है, क्योंकि स्वतंत्रता ही जीवन है और गुलामी मृत्यु। स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इसे प्राप्त करने के बाद ही हम जीवित रह पाएंगे। हम इंकलाब के माध्यम से अपनी जवानी का बलिदान देने के लिए तैयार है। इस महान आदर्श की प्राप्ति के लिए अपनी जवानी का बलिदान देने से कम और क्या हो सकता है?''

इंकलाब ज़िंदाबाद! साम्राज्यवाद मुर्दाबाद! मजदूर-किसान एकता ज़िंदाबाद!

चन्द्र शेखर आजाद - भारत के महान क्रांतिकारी

चन्द्र शेखर आजाद भारत के महान क्रांतिकारी थे, जिनके विचार आज भी युवाओं को प्रेरित करते हैं। उनके विचार स्वतंत्रता, साहस और आत्मसम्मान पर आधारित थे।



चन्द्र शेखर आजाद के प्रेरणादायक विचार :

स्वतंत्रता सर्वोपरि है

आजाद मानते थे कि व्यक्ति और राष्ट्र के लिए स्वतंत्रता सबसे बड़ा अधिकार है। इसके बिना जीवन अधूरा है।

अन्याय के खिलाफ संघर्ष :

वे अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध खड़े होने में विश्वास रखते थे, चाहे इसके लिए कितना भी बड़ा बलिदान क्यों ना देना पड़े।

युवा शक्ति पर विश्वास :

वे युवाओं को देश की ताकत मानते है और उन्हें देशभक्ति के लिए प्रेरित करते थे।

''मैं आजाद हूँ, आज़ाद ही रहूँगा''

यह उनका प्रसिद्ध संकल्प था, जो उनके आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय को दर्शाता है।

साहस और निर्भीकता:

आजाद का जीवन निडरता का प्रतीक था। उन्होंने अंग्रेज़ों के सामने कभी आत्मसमर्पण नहीं किया।

अनुशासन और संगठन:

उन्होंने क्रांतिकारी गतिविधियो में अनुशासन और एकता को बहुत महत्व दिया।

उनके अमर वचन :

''दुश्मन की गोलियों का हम सामना करेंगे, आजाद ही रहे हैं, आजाद ही रहेंगे!''

''अगर देश के लिए मरना पड़े, तो यहो सबसे बड़ा गौरव है!''

प्रेरणास्रोत : तर्कशील सोसायटी पंजाब और हरियाणा

निरंतर साहस से अंधविश्वास, शोषण, गुलामी का विरोध कीजिए।''-राहुल सांकृत्यायन

प्रकृति का सबसे कोमल तत्व जल, सबसे कठोर चट्टान को भी गहरे तक काटने की क्षमता रखता है। भौतिक विज्ञान में इसे 'यांत्रिक अपक्षय' कहा जाता है। जब पानी की बूंदें बिना रुके एक ही बिंदु पर गिरती हैं, तो उनकी निरंतर गतिज ऊर्जा पत्थर की सतह पर लगातारर सूक्ष्म दबाव डालती है।



पानी का एक बार का भारी प्रहार चट्टान की सतह को केवल अव्यवस्थित करता है, परंतु बूंदों का निरंतर घर्षण पत्थर के ठोस कणों को अंदर तक अलग कर देता है। यह सत्ताक भौतिक नियम मानव मस्तिष्क पर भी पूरी तरह लागू होता है। निरंतर विज्ञान,प्रमाणित करता है कि किसी कार्य का निरंतर अभ्यास मस्तिष्क में बहुत मजबूत तंत्रिका पथ का निर्माण करता है, जिससे किसी भी कार्य में स्थायी परिणाम प्राप्त होता है।

फीदल कास्त्रो -एक क्रांतिकारी विचारक और जननेता

फीदल कास्त्रो 20वीं सदी के प्रमुख क्रांतिकारी नेता थे। जिनके विचार साम्राज्यवाद-विरोध, सामाजिक न्याय और समानता पर आधारित थे।

साम्राज्यवाद का विरोधः
कास्त्रो का मानना था कि किसी भी राष्ट्र को बाहरी शक्तियों के प्रभाव से मुक्त रहकर अपनी नीतियाँ स्वयं तय करनी चाहिए। उन्होंने विशेष रूप से United States की नीतियों की आलोचना करते हुए कहा कि बड़ी शक्तियाँ छोटे देशों का शोषण करती हैं।

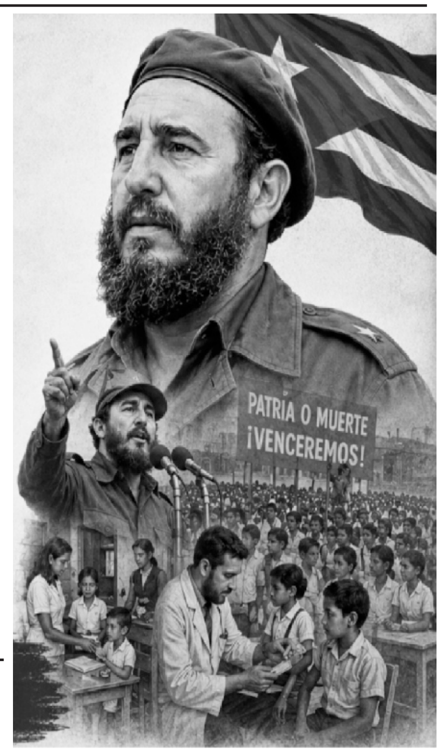
साम्राज्यवाद के प्रबल समर्थक :
वे चाहते थे कि देश के संसाधनों पर आम जनता का अधिकार हो, न कि कुछ अमीर वर्ग का। उनके नेतृत्व में क्युबा में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत किया गया, ताकि हर नागरिक को बुनियादी सुविधाएँ मिल सकें।

शिक्षा और जागरुकता पर जोरः
उनको विश्वास था कि शिक्षा और जागरुकता से ही समाज में वास्तविक परिवर्तन संभव है। क्यूबा में निरक्षरता को खत्म कर, शिक्षा को सभी के लिए अधिकार बनाया गया।

क्रांति का असली अर्थः
उन्होंने क्रांति को केवल सत्ता परिवर्तन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का माध्यम माना। उनके अनुसार, क्रांति का उद्देश्य मानव मुक्ति, समानता और न्याय की स्थापना है।

युवाओं के लिए संदेशः
कास्त्रो युवाओं को विशेष रूप से प्रेरित करते थे किवे समाज के प्रति जिम्मेदारी समझें और अन्याय के खिलाफ आवाज उठाएँ। उनका मानना था कि युवा ही भविष्य के निर्माता है।

''हर साम्राज्यवाद के खिलाफ इसलिए नहीं लड़ते क्योंकि हम अमेरिका से नफरत करते हैं, बल्कि इसलिए क्योंकि हम अपने देश से पयर करते हैं। हम एक बेहतर, अधिक न्यायपूर्ण और समान समाज का निर्माण करना चाहते हैं।''



क्या चमगादड़ अपने कानों के 'देखते' हैं?

-राजपाल सिंह

यह बात आपको अटपटी लग सकती है, भला कोई कानों के ज़रिए कैसे देख सकता है, जबकि कान तो सुनने के लिए होते हैं। 'देखना' शब्द शायद पूरी तरह सही नहीं है, लेकिन गलती करने से पहले कुछ जानकारी हासिल कर लेनी चाहिए।

चमगादड़ों में की आंखें काम नहीं करती, इसलिए प्रकाश तरंगें उनके देखने के लिए उपयोगी नहीं होतीं। अत: वे अपने परिवेश को जानने के लिए ध्वनि तरंगों का उपयोग करते हैं। ये जीव उड़ते समय लगातार ध्वनि तरंगें उत्पन्न करते हैं। ये तरंगें आसपास की वस्तुओं से टकराकर चमगादड़ के कानों तक पहुँचती हैं, जिससे वे इन ध्वनि तरंगों के माध्यम से वस्तु की स्थिति और आकार जान पाते हैं।



हमें यह प्रक्रिया थोड़ी जटिल लग सकती है कि पहले ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं, वे ध्वनि तरंगें वस्तु से टकराकर वापस आती हैं, और फिर उन वापस आई ध्वनि तरंगों से वस्तु का पता लगाया जाता है। लेकिन वास्तव में, यह एक बहुत ही सरल और प्राकृतिक प्रक्रिया है। इसे आसानी से समझने के लिए, इसकी तुलना अंधेरे में टॉर्च लेकर जाने वाले व्यक्ति से की जा सकती है। जैसे टॉर्च की किरणें सामने की वस्तुओं पर पड़ती हैं और उनसे टकराकर वापस व्यक्ति की आंखों तक पहुंचती हैं, तब उसे वस्तुओं का पता चलता है। ठीक यही प्रक्रिया चमगादड़ों के साथ भी होती है। अंतर केवल इतना है कि हम वस्तुओं की स्थिति और आकार जानने के लिए प्रकाश तरंगों का उपयोग करते हैं और प्रकाश के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने के लिए उपयुक्त अंग आंख है, उसी प्रकार चमगादड़ इसी उद्देश्य के लिए ध्वनि तरंगों का उपयोग करते हैं, जो कान जैसे उपयुक्त अंग द्वारा ग्रहण की जाती हैं। विधि में एकमात्र अंतर यह है कि हमें सूर्य जैसे बाहरी स्रोतों से प्रकाश मिलता है, जबकि चमगादड़ों को स्वयं ध्वनि तरंगें उत्पन्न करनी पड़ती हैं। (जैसे टॉर्च लेकर प्रकाश उत्पन्न करने वाला व्यक्ति)

इनके द्वारा उत्पन्न ध्वनियाँ हमें सुनाई नहीं देतीं क्योंकि मनुष्य के कान केवल 20,000 हट्र्ज़ तक की आवृत्ति वाली ध्वनियाँ ही सुन सकते हैं, जबकि चमगादड़ के कानों की क्षमता 150,000 हट्र्ज़ तक होती है और इनके द्वारा उत्पन्न ध्वनि तरंगें भी उच्च आवृत्ति की होती हैं जिन्हें केवल इनके कान ही ग्रहण कर सकते हैं। इन ध्वनि तरंगों की सहायता से ये हवा में उड़ने वाले छोटे-छोटे कीड़ों का भी सटीक पता लगा सकते हैं, जिनका ये शिकार करके खाते हैं। शायद आपको यह जानकारी न हो कि मनुष्यों द्वारा विमानों का पता लगाने के लिए बनाए गए रडार चमगादड़ों से सीखकर ही विकसित किए गए हैं। इनमें रेडियो तरंगें आकाश में भेजी जाती हैं, जो विमान से टकराकर वापस आती हैं और विमान की स्थिति के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करती हैं।

सबसे पहले, इतालवी वैज्ञानिक लाज़ारो स्पैलाज़नी ने चमगादड़ों पर प्रयोग किए। उन्होंने देखा कि चमगादड़ की आँखों को नुकसान पहुँचाने से उसकी उड़ान पर कोई असर नहीं पड़ा, जबकि उसके कान बंद करने से वह उड़ नहीं सका। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वह अपने कानों के ज़रिए देखता है। हालाँकि, कानों के ज़रिए देखना पूरी तरह सही नहीं है क्योंकि देखने की प्रक्रिया प्रकाश के ज़रिए होती है, जबकि चमगादड़ ध्वनि तरंगों का उपयोग करते हैं। यह कहा जा सकता है कि चमगादड़ अपने कानों के ज़रिए अपने आसपास की दुनिया को जानते हैं।

(संपादक: पत्रिका 'तर्कशील' पंजाबी)

विज्ञान कथा

वोह दिन भी क्या दिन थे

-इसाक असीमोव

यह घटना सच में ही महत्वपूर्ण रही होगी नहीं तो कुम्मी उसको अपनी डायरी में क्यों लिखती। अपनी डायरी में उसने 17 मई सन 1955 की रात को लिखा, 'आज रोहित को सचमुच की एक किताब मिली है'।

यह पुस्तक बहुत पुरानी थी। एक बार कुम्मी के दादाजी ने बताया था कि जब वह बहुत छोटे थे तो उनके दादा ने कहा था कि उनके जमाने में सभी कहानियां कागज पर छपती थी और पढ़ी जाती थी। पुस्तक में पन्ने हुआ करते थे जिस पर कहानी छपी होती थी और हर पन्ना पढ़ने के बाद उसे पलट कर आगे पढ़ना पड़ता था। सभी शब्द स्थिर रहते थे, चलते नहीं थे, जिस तरह आज पर्दे पर चलते हैं।

रोहित ने कहा था, %तब कितनी पुस्तकें बेकार जाती होंगी। एक बार पढ़ो और फिर बेकार हो गई। अब तो हमारे टेलीविजन के परदे पर न जाने कितनी पुस्तकों की सामग्री आ जाती है और फिर भी नई की नई रहती हैं। कुम्मी को रोहित की बात ठीक लगी और पूछा, 'तुम्हें यह पुस्तक कहाँ से मिली?' रोहित ने बताया, अपने घर में से। एक पुराना डिब्बा बेकार पड़ा था। उसे फेंकने लगे थे कि उसमें से यह पुस्तक मिली।

'इसमें क्या लिखा है?'

'स्कूल के बारे में लिखा है।'

'स्कूल?' कुम्मी ने प्रश्न किया।

स्कूल के बारे में लिखने जैसा होता ही क्या है? हर विद्यार्थी के घर में एक मशीन होती है, जिस पर टेलीविजन की तरह एक पर्दा होता है। हमें हर रोज उसके सामने बैठकर वह सब याद करना होता है, जो मशीन हमें बताती है। फिर वह हमें करने के लिए कुछ काम देती है। काम करने के बाद हमें उसे मशीन में डाल देना होता है। फिर मशीन हमें हमारी गलतियां समझाती है। एक विषय खत्म होने के बाद हमें आगे पढ़ाना शुरू कर देती है।.... बोलते बोलते कुम्मी थक गई। अंत में बोली, 'कितना बोर होता है यह स्कूल का सारा काम।'

रोहित मुस्कुराते हुए उसकी बातें सुन रहा था। 'अरे बुद्ध, जैसे स्कूल का वर्णन इस किताब में है, वह अपने स्कूल से बहुत अलग किस्म का होता था। इस पुस्तक में तो उन स्कूलों के बारे में लिखा है जो सदियों पहले हुआ करते थे।' कुम्मी के मन मेंउत्सुकता जाग उठी और बोली, 'फिर भी उन स्कूलों में अध्यापक-मशीनें तो होती ही होंगी'।

कुम्मी को याद आया कि एक बार जब उसे भूगोल में हर रोज वही गलतियां बार-बार हो रही थी तो उसकी माँ ने मोहल्ले के प्रधान को बताया था। फिर एक आदमी आया था उसने मशीन के पुर्जे अलग-अलग कर दिए। उस समय उसने मन ही मन यह चाहा था कि वह आदमी इस बोर करने वाले 'अध्यापक' को फिर से जोड़ ना सके ताकि उसे हमेशा के लिए छुट्टी मिल जाए। लेकिन उस आदमी ने मशीन को फिर से जोड़कर उसकी माँ को बताया था, लगता है इस मशीन की भूगोल वाली चक्री की रफ्तार कुछ तेज हो गई थी, इसलिए आपकी बेटी को समझने में मुश्किल आ रही थी। मैंने इसकी गति कम कर दी है। मुझे आशा है अब सब ठीक चलेगा। और कुम्मी को उसी समय भूगोल का सबक याद करने के लिए बैठना पड़ा था। मन ही मन उसने मशीनी-अध्यापक को बड़ा कोसा था।

रोहित ने कुम्मी के सोचने के सिलसिले को तोड़ डाला और कहा, 'हाँ, उस समय भी अध्यापक होते थे, लेकिन मशीन नहीं बल्कि अध्यापक औरत और पुरुष ही होते थे।'

'क्या कहा? क्या कोई औरत या पुरुष हमें इतने सारे विषयों के बारे में पढ़ा सकता है?'

'क्यों नहीं। वह बच्चों को सभी विषय समझाते थे। घर का काम देते थे। प्रश्न पूछते थे। अध्यापक बच्चों के घर नहीं जाते थे, बल्कि बच्चे एक विशेष भवन में जाते थे जिसे स्कूल कहा जाता था।'

कुम्मी ने अगला प्रश्न पूछा, 'क्या सभी बच्चे एक समय में एक जैसी बातें ही सीखते थे?'

'हाँ, एक उम्र के बच्चे एक साथ ही बैठते थे।'

'लेकिन माँ तो कहती है कि मशीनी अध्यापक हर बच्चे

को उसकी समझ के अनुसार ही पढाता है, फिर पुराने जमाने में यह कैसे संभव होता था?'

'उस समय वह लोग इस तरह नहीं करते थे। चल रहने दे। अगर तेरी इच्छा नहीं है तो मैं यह किताब तुम्हें नहीं देता।'

कुम्मी झटपट बोली, नहीं-नहीं, मैं यह किताब पढ़ना चाहती हूँ कि उस समय के स्कूल किस तरह के होते थे? किताब पढ़ कर कितनी अजीब बातें जानने को मिलेंगी।'

इतने में अंदर से माँ की आवाज आई। कुम्मी बोली, लगता है सबक पढ़ने का वक्त हो गया।

रोहित उठकर घर चला गया। कुम्मी भी घर के अंदर चली गई। आगे मशीन सबक देने के लिए तैयार थी। मशीन में से आवाज आने लगी-आज सबसे पहले गणित सीखेंगे, कल का होमवर्क मशीन में डालो। कुम्मी ने वैसे ही किया। मैं सोच रही थी कि कितने अच्छे होते होंगे वह पुराने स्कूल, जहां एक ही उम्र के सभी बच्चे हँसते, खेलते, कूदते स्कूल जाते होंगे। पढ़ाने वाले औरत और पुरुष होते होंगे।

इतने में मशीन से फिर आवाज आने लगी। पर्दे के ऊपर अक्षर और अंक चलने शुरू हो गए थे।

और कुम्मी सोच रही थी कि 'उन दिनों में स्कूल जाने में कितना मजा आता होगा, कितने खुश रहते होंगे सभी बच्चे।'

(मशीन अर्थात् कंप्यूटर)

एक गणितीय प्रश्न

अष्टभुजा शुक्ल

किसी धार्मिक स्थान के
विवाद में
तीन हजार लोग बमों से
दो हजार गोलियों से
एट हजार चाकुओं से
और पांच सौ लोग जलाकर मार दिए।
चार सौ महिलाओं की इज्जत लूटी गई
और तीन सौ नवजात शिशु को
बलि का बकरा बनाया जाता है।
धर्म में
सहनशीलता का प्रतिशत ज्ञात कीजिए।

हम भारत नया बनाएंगे

******

मुनेश त्यागी

वो बांट रहे हैं जनता को
हम सब जनता को जोड़ेंगे,
शोषण का शिकंजा तोडेंगे
हम भारत नया बनाएंगे।

भाग रहे वो पीछे को
हम तो आगे बढ़ते जाएंगे,
जोड़ेंगे सारे भारत को
हम भारत नया बनाएंगे।

ज़ालिम फिर से आ गए
जनता को फिर जगायेंगे
करेंगे सबको ही एकजुट
हम भारत नया बनाएंगे।

वो बिखेर रहे हैं लोगों को
हम तिनका तिनका जोड़ेंगे,
हमारे साथ में आओ तो
हम भारत नया बनाएंगे।

जेल मिले या फांसी मिले
हम तो आवाज उठाएंगे,
लहराएंगे क्रांति का झंडा
हम भारत नया बनाएंगे।



रूढ़ियों को लोग इसलिए मानते हैं, क्योंकि उनके सामने रूढ़ियों को तोड़ने वालों के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं।

राहुल सांकृत्यायन

सिजोफ्रेनिया : मन-मन के सवाल

-डॉ. नरेंद्र दाभोलकर,डॉ. हामिद दाभोलकर

तर्कशील पथ के मई -जून के अंक में सिजोफ्रेनिया के बारे में अलग-अलग प्रश्नों के जवाब दिए थे, यह प्रश्नों की कड़ी इस अंक में भी जारी है।

हमारा राजू 27 साल का है। वह बचपन से ही संशयी है। वह किसी भी बात पर जल्द विश्वास नहीं रखता है। वह हमेशा दूसरों के इरादों को शक की निगाह से देखता है। संशयी स्वभाव के कारण उसके दोस्त भी उससे दूर होते गए हैं। उसके साथ कैसा बर्ताव करें यह समझ में नहीं आता है।

मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सामान्यत: 18 साल की उम्र के बाद व्यक्तित्व के दोषों का प्राथमिक निदान हो सकता है। हर मनुष्य के व्यक्तित्व के दो हिस्से होते हैं। एक हिस्सा आनुवंशिकता से आता है तो दूसरा उस व्यक्ति के मानसिक विकास के अलग-अलग मोड़ पर आनेवाले मानसिक-सामाजिक अनुभवों से निर्मित होता है। %होनहार बिरवान के होत चीकने पात% इस कहावत के अनुसार बच्चों के व्यक्तित्व की दिशा हमें उनके बचपन से ही समझ में आ सकती है। किंतु कई बार बढ़ती उम्र की प्रक्रिया में इसमें बड़े सामाजिक एवं मानसिक बदलाव होने की वजह से बच्चों के व्यक्तित्व में बहुत बड़े बदलाव भी हमें दिखाई देते हैं।

आपने जो बताया उसके अनुसार राजू के स्वभाव में संशयग्रस्त व्यक्तित्व दोष के लक्षण दिखाई देते हैं। संशयग्रस्त व्यक्तित्व के लक्षण यानी ऐसे व्यक्ति जल्द किसी पर भी विश्वास नहीं रखते हैं। अपने इर्द-गिर्द घटनेवाली घटनाओं को लेकर वे बहुत ही संशयी और संवेदनशील होते हैं। मेरे आस-पास के लोग मुझे फँसाकर मेरा नुकसान तो नहीं कर रहे हैं इस बात का वे हमेशा अंदाज लेते रहते हैं। उनके ऐसे स्वभाव के कारण लोग संभवत: उन्हें टालते हैं। इसलिए संशयग्रस्त व्यक्तित्वके लोगों के दोस्त कम ही होते हैं। दूसरों के साथ तुलना करना और स्पर्धा करना ये दो बातें भी राजू जैसे व्यक्तित्व के लोगों में दिखाई देती हैं। किसी व्यक्ति की सहज या मजाक से कही हुई बात भी उनके दिल को लगती है। ऐसे लोग अपना अपमान सहजता से नहीं भूलते हैं। कभी न कभी उसका बदला लेने का विचार करते रहते हैं। संशयग्रस्त स्वभाव की वजह से न्याय व्यवस्था, कोर्ट-कचहरी जैसी बातों में उनका बहुत समय जाया हो सकता है। मूलत: विश्वास की भावना कम होने के कारण राजू जैसे व्यक्तित्व के लोगों का इलाज कराना यह एक बड़ी चुनौती होता है।

संशय की जड़ में ज्यादातर असुरक्षा की भावना होने के कारण राजू जैसे व्यक्ति को सुरक्षा का विश्वास देना, उस दृष्टि से उसे सहारा देना बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। उसके संशयी स्वभाव को लेकर उसका हँसी-मजाक न करके बहुत सावधानी से उसे संशय की भावना के सिवाय अन्य भावनाओं पर सोचने को सिखाना जरूरी है। जैसे राजू पर शिक्षक गुस्सा कर रहे हैं तो उसे यह संशय है कि वे मुझ अकेले पर ही गुस्सा करते हैं। ऐसी स्थिति में हमें उसे यह समझाना चाहिए कि उस शिक्षक ने अन्य छात्रों पर भी गुस्सा किया था या उसी शिक्षक ने कुछ दिन पहले राजू की प्रशंसा की थी। उसे याद दिलाकर भी उसके संशयग्रस्तता के एहसास को नियंत्रण में लाया जा सकता है।

मेरा चचेरा भाई संदेश बचपन से ही बहुत एकांगी है। उसके ज्यादा दोस्त भी नहीं हैं। घर में लोगों के साथ भी उसका ज्यादा सुसंवाद नहीं होता है। वह हमेशा अपनी ही दुनिया में रहता है और %एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्शन% में बात करते रहता है। मजे की बात यह कि उसे स्वर्ग-नर्क, राक्षस योनि ऐसी बातें वास्तविक लगती हैं। क्या संदेश में कोई विकार है?

संदेश के जो लक्षण हैं वे %स्किजाइड-स्किजोटायपल% इस व्यक्तित्व दोष के हैं। उम्र के नौ-दस साल से इस व्यक्तित्व दोष के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। संदेश के लक्षणों के व्यक्ति कमाल के अकेले होते हैं। दिन का बहुत सारा समय वे अपने आप में खोए होते हैं। रिश्तेदार, दोस्त लोगों से खुद को जोड़ना इन बातों की उन्हें भावनिक आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। भविष्य में विवाह जैसी बातों को टालने की उनकी मानसिकता रहती है क्योंकि उस रिश्ते में भावनिक नजदीकी टालना लगभग असंभव होता है। सिजोफ्रेनिया की बीमारी के प्राथमिक या सौम्य स्वरूप के रूप में ऐसे व्यक्तित्व दोष की ओर देखा जाता है। इसलिए %एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्शन% जैसी बातों पर इन लोगों का विश्वास होता है। टेलिपैथी जैसी बातें,

यानी %दूसरे के मन में आनेवाले विचार उसके बिना बताए भी मुझे समझ में आ रहे हैं% ये अनुभव संदेश जैसे मनोरोगी को आते हैं। वास्तविकता की कसौटी पर यह सही नहीं होता।

सिजोफ्रेनिया में मरीज को होनेवाले भ्रम और सामान्य व्यक्ति को वास्तविक स से होनेवाली संवेदना के अनुभव इन दोनों के बीच कहीं तो संदेश जैसी व्यक्ति क होनेवाली संवेदना को समझा जा सकता है। वास्तव और भ्रम की सीमारेखाएँ रूप से नष्ट नहीं हुई तो भी वे अस्पष्ट अनिश्चित ही होती हैं। इसलिए स्वर्ग-नई जैसी भ्रामक कवि कल्पनाओं और वास्तविक दुनिया में वह अंतर नहीं कर सकता है। सामान्य व्यक्ति के मन में भी स्वर्ग-नर्क जैसी कल्पनाएँ होती हैं। किंतु उप निहित प्रतीकात्मकता और वास्तविकता इन बातों के संदर्भ में सामान्य व्यक्ति को निश्चित ज्ञान होता है। यही बात संदेश जैसे व्यक्तित्व में अस्पष्ट होती है।

संदेश जैसे लोग अधिकांशतः इलाज के लिए तैयार नहीं होते हैं और तुह अकेलेपन का जीवन जीते रहते हैं। केवल रिश्तों में तनाव का निर्माण होने के बाट या सिजोफ्रेनिया जैसे लक्षणों के बाद ही वे डॉक्टर के पास जाते हैं। उनके इलाज में, उचित अंतर रखकर मरीज से रिश्ता जोड़ना यह महत्त्वपूर्ण शर्त है, क्योंकि इसी बात को लेकर मरीज को ज्यादा घृणा होती है। उसके बाद मरीज को उसकी समस्या की सचाई समझाने में मदद की जाती है। वैसे ही उसे समाज में जीन के कुछ कौशल सीखने में भी मदद करनी चाहिए। आवश्यकता के अनुरूप माइल्ड प्रकार की कुछ दवाइयाँ देना भी लाभदायी होता है।

मेरी बहन रचना का पति नरेश हमेशा उसके चरित्र को लेकर संदेह करता है। वह चोरी-छुपे उस पर नजर रखता है और कभी-कभी तो संदेह के कारण वह उसे पीटता भी है। सचाई का कुछ भी आधार न होने के बावजूद किए जा रहे इस संशय के कारण हम सभी बहुत परेशान हैं। क्या इसका कोई इलाज है?

ऊपरी तौर पर दिखाई न देनेवाला किंतु समग्र परिवार को नष्ट करने की संभावना रखनेवाला यह एक मनोविकार है। इसे विचारभ्रम का विकार कहते हैं। इस बीमारी के शिकार व्यक्ति के कुछ निश्चित विचार छोड़कर अन्य समग्र व्यक्तित्व बिलकुल स्वस्थ होता है। इससे यह एक बीमारी है इस पर ही शुरू में विश्वास नहीं होता है। परिणामस्वरूप उसे स्वीकार करना भी उतना ही कठिन होता है।

नरेश को रचना के चरित्र पर जो संशय है वह संशय का विचारभ्रम है। विचारभ्रम एक ऐसा भ्रमपूर्ण विचार होता है जो मूलतः किसी गलत अनुमान पर खड़ा होता है। मेरी पत्नी के किसी अन्य पुरुष के साथ नाजायज संबंध हैं यह नरेश का अनुमान इसी प्रकार का है।

विचारभ्रम का दूसरा लक्षण यह है कि कितने भी सबूत देने के बाद भी इस विचारभ्रम का निराकरण नहीं किया जा सकता है। विचारभ्रम के शिकार होनेवालेव्यक्ति की दृष्टि से उसका भ्रम पूर्णतः सच होता है, इसलिए उसकी सभी भावनाएँ और कृतियाँ उस भ्रम के अनुरूप ही होती हैं। यहाँ नरेश की दृष्टि से उसकी पत्नी के विवाह बाह्य संबंध होने का भ्रम पूर्णतः सही है, इसलिए उसकी इसी दृष्टि से कृति होती है। लेकिन जल्दबाजी में आकर नरेश को विलेन साबित करना उचित नहीं होगा।

चरित्र को लेकर संशय होने का विचारभ्रम कई कारणों से हो सकता है। इसमें कुछ अंश आनुवंशिकता का है तो कुछ अंश मानसिकता का होता है। व्यक्तित्व में आत्मविश्वास की कमी और स्वप्रतिमा खंडित होनेवाले व्यक्ति को जल्द संशय आ सकता है। विवाह के बाद आनेवाला संशय कुछ विशिष्ट लैंगिक कारणों से भी हो सकता है। जैसे, किसी पुरुष को कुछ लैंगिक समस्याएँ हैं तो उस व्यक्ति के मन में न्यूनता की भावना का तैयार होकर उसका पत्नी के चरित्र पर संशय करने की भावना में बदलाव होता है। उदासीनता के मनोविकार में भी कई बार संशय का विचारभ्रम होता है। उदासीनता के इलाज के बाद यह विचारभ्रम कुछ मात्रा में नियंत्रण में आ सकता है। शराब, गांजा जैसे पदार्थों का व्यसन यह भी संशय के विचारभ्रम के पीछे का एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

इस बीमारी में नरेश और रचना इन दोनों का इलाज कराना जरूरी है। रचना का इलाज इसलिए कि बार-बार उसके चरित्र पर संशय करने की वजह से उसकी भावनिक स्थिति तनावपूर्ण और कोमल हुई होगी। इसलिए उसे नरेश की बीमारी का सही स्वरूप समझाना होगा। साथ ही अपनी सहेलियों-दोस्तों और परिवारजनों की सहायता लेने को भी सीखना होगा। किंतु मुख्य इलाज नरेश का है और उसे इलाज की जरूरत है यह नरेश को समझाना सबसे कठिन और कुशलता का काम है। किंतु एक बार यह काम हुआ तो विचारभ्रम कम करनेवाली दवाइयों और समुपदेशन प्रक्रिया के द्वारा नरेश को हम उसके संशय के विश्व से वास्तविक जीवन में वापस ला सकते हैं।

''विज्ञान और वैज्ञानिक नजरिया'' पर जरूरी पुस्तक

-मोहित वर्मा

हमारे देश और समाज में एक अजीब विरोधाभास दिखाई दे रहा है. एक तरफ विज्ञान और तकनोलोजी की उपलब्धियों का तेजी से प्रसार हो रहा है तो दूसरी तरफ के जनमानस में वैज्ञानिक नजरिये के बजाय अंधविश्वास, कट्टरपंथ, पोंगापंथ, रूढ़ियों और परम्पराएँ तेजी से पाँव पसार रही हैं. वैज्ञानिक नजरिया, तर्कशीलता, प्रगतिशीलता और धर्म निरपेक्षता की जगह अंधश्रद्धा, संकीर्णता और असहिष्णुता को बढ़ावा दिया जा रहा है।

अखबारों और टीवी चैनलों पर बंगाली बाबाओं, तांत्रिकों, ज्योतिषियों और तथाकथित चमत्कारी पुरुषों के विज्ञापनों की बाढ़ आई हुई है यंत्र-तंत्र, गंडा-ताबीज और मनोकामना पूरी करने वाली अंगूठियां सरेआम बेची जा रही हैं सबसे चिंताजनक बात यह है कि अब फलित ज्योतिष और कर्मकांड जैसे छद्म-विज्ञान को बाकायदा महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में शामिल करके इसे विज्ञान' सिद्ध करने की कोशिशें की जा रही हैं



ऐसे समय में विज्ञान और वैज्ञानिक नजरिया पुस्तक इसी त्रासद विरोधाभास की परतें खोलती है. यह पुस्तक विज्ञान के सिद्धांतों का संकलन नहीं है, बल्कि यह हमारे समाज में तेजी से पैर पसार रहे अंधविश्वास, कट्टरपंथ, रूढ़िवादिता और पोंगापंथ के खिलाफ हमारी चेतना को धार देने का काम करती है।

अंधविश्वास और चमत्कारों के पीछे पागल लोगों की भीड़ में उच्च शिक्षित और सम्मानजनक पेशों से जुड़े लोगों, उच्च अधिकारियों और नेताओं-मंत्रियों की अच्छी खासी तादाद देखने को मिलती है। रत्त जड़ित अंगूठियों और गंडा-ताबीज पहनना, बाबाओं के डेरे या मजारों पर जाना, मूहूर्त निकाल कर हर काम करना उनकी रोजमर्रे की जिन्दगी का हिस्सा है 'अलोकिक शक्ति वाले चमत्कारी पुरुषों के अवतार के जो भी नये-नये मामले समाने आते हैं, उनकी भक्त मंडली में बड़े-बड़े नाम-पद धारी लोग शामिल होते हैं। जब समाज के पढ़े लिखे लोग अंधविश्वास और चमत्कारों के पीछे पागल तो आम जनता आँख मूंदकर उनका अनुशरण करती है राजनीतिक पार्टियों के नेता भी ऐसे मठाधीशों, बाबाओं और प्रवचनकर्ताओं के साथ साँठ-गाँठ करके भक्तों की भीड़ को वोट में बदल लेते है।

पुस्तक में इतिहास के माध्यम से यह समझाया गया है कि मानव सभ्यता की विकास यात्रा में विज्ञान और वैज्ञानिक नजरिया हमेशा साथ-साथ नहीं चले हैं

आदिकाल में हमारा पूर्वज प्रकृति की विकराल शक्तियों (बाढ़, बिजली, बीमारी) के आगे लाचार था उसने डर और अज्ञानता वश प्रकृति की पूजा शुरू की, लेकिन धीरे-धीरे उसने आग, पहिए और पत्थरों के औजारों का आविष्कार करके कार्य-कारण संबंधों को समझा इस सामूहिक अनुभव ने विज्ञान की आधारशिला रखी।

मध्यकाल में आकर यह विकास यात्रा पूरी तरह अवरुद्ध हो गई. सामंती समाज में राजाओं और धर्म के बीच एक अपवित्र साठगांठ बनी। शासक वर्ग ने अपने शोषण को वैध बनाए रखने के लिए जनता में धर्मभीरुता, कट्टरता और अंधश्रद्धा को बढ़ावा दिया। धार्मिक रहस्वाद को सत्ता बनाए रखने का हथियार बनाया गया, जिससे ज्ञान-विज्ञान का विकास बाधित हुआ।

15वीं शताब्दी में यूरोप में गैलीलियो, कॉपरनिकस और ब्रूनो जैसे वैज्ञानिकों ने धार्मिक मान्यताओं को चुनौती दी, जिसके लिए उन्हें अमानुषिक यातनाएं दी गई। उस दौर में उभरते हुए पूँजीपति वर्ग ने अपने व्यापारिक लाभ और उत्पादन बढ़ाने के लिए नई मशीनों और वैज्ञानिक खोजों का समर्थन किया. सामंतवाद को तोड़ने के लिए जनता को तार्किक बनाना जरूरी था, इसलिए उस दौर में विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़े।

पूँजीपति वर्ग ने अपने शुरुआती दौर में सामंतवाद और रूढ़ियों के खिलाफ जीवन-मरण का संघर्ष किया. लेकिन जैसे ही वह सत्ता में स्थापित हुआ, उसने अपने वर्गीय शासन को बनाए रखने के लिए उन्हीं सामंती और प्रतिगामी ताकतों से समझौता कर लिया जिनसे वह लड़ा था। आज का पूँजीवाद चाहता है कि बहुसंख्यक मेहनतकश जनता अपने अधिकारों के लिए लड़ने के बजाय भाग्यू, भगवान और अंधविश्वास के जाल में फंसी रहे।

विज्ञान पढ़ना या वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करना एक बात है, लेकिन अपने दैनिक जीवन और विचारों में तार्किक, प्रगतिशील और विवेकी होना बिल्कुल अलग बात है। आज का पूंजीपति वर्ग तकनीक का इस्तेमाल करके अकूत गुनाफा कमाता है. लेकिन जनता का वैज्ञानिक चेतना से लेस होना उसके लिए खतरनाक है।

हमारे मौजूदा शासकों ने जनता को वैज्ञानिक चेतना से काटकर कूपमंडूपता की और धकेल दिया है. सरकारी कार्यक्रमों में नारियल फोड़ना, हवन-पूजन और अनुष्ठान करना आम बात हो गई है। हमारा शासक वर्ग किसी महान लोकतांत्रिक क्रांति से पैदा नहीं हुआ, बल्कि उसने अंग्रेजों से समझौते और सत्ता हस्तांतरण के जरिए देश की बागडोर संभाली। वोट बैंक की राजनीति के कारण नेताओं ने बाबाओं, मठाधीशों और प्रवचनकर्ताओं के साथ साठगांठ करके जनता को अन्धविश्वास की दलदल में धकेल दिया है।

इस पुस्तक में संकलित लेख वैज्ञानिक नजरिया विकसित करने की दिशा में सक्रिय एक ऐसे ही मंच 'द बैंगलोर साइन्स फोरम' द्वारा 1987 में प्रकाशित 'साइन्हा, नॉन साइन्स एण्ड द पारानौरमल' नामक संकलन से लिये गये हैं इस मंच से जुड़े प्रख्यात वैज्ञानिकों और विचारकों ने विज्ञान के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ चमत्कारों के दावों की पोल खोलने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई थी हिंदी पाठकों के लिए इस संकलन से चुने गए 10 बेहद गंभीर और तार्किक लेखों का अनुवाद इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है, जो आज के दौर में और भी अधिक प्रासंगिक हो उठे हैं।

पुस्तक - विज्ञान और वैज्ञानिक नजरिया

पृष्ठ - 86

मूल्स - 70 रूपये

प्रकाशक: गार्गी प्रकाशन

विज्ञान के कुछ रोचक तथ्य

1-मनुष्य के शरीर में लगभग 37 ट्रिलियन (37 लाख करोड़) कोशिकाएँ होती हैं।

2-हमारे शरीर की सबसे मजबूत हड्डी जांघ की हड्डी (फीमर) होती है।

3-प्रकाश की गति लगभग 3 लाख किलोमीटर प्रति सेकंड है।

4-एक बिजली की चमक की गर्मी सूर्य की सतह से भी अधिक गर्म हो सकती है।

5-पृथ्वी पर मौजूद अधिकांश ऑक्सीजन का उत्पादन पेड़ों से नहीं, बल्कि समुद्र में रहने वाले सूक्ष्म संजीवों द्वारा होता है।

6-मानव मस्तिष्क लगभग 20 वाट ऊर्जा उत्पन्न कर सकता है, जो एक छोटे बल्ब को जलाने के लिए पर्याप्त है।

7-पानी गर्म होने पर फैलता है, लेकिन 4°C से 0°C के बीच इसका व्यवहार अलग होता है और यह फैलने लगता है। इसी कारण बर्फ पानी पर तैरती है।

8-पृथ्वी का लगभग 71% भाग पानी से ढका है, लेकिन पीने योग्य मीठा पानी 1% से भी कम है।

9-एक मधुमक्खी अपने पंख प्रति सेकंड लगभग 200 बार फड़फड़ा सकती है।

10-मानव शरीर में मौजूद डीएनए को सीधा फैलाया जाए तो उसकी लंबाई अरबों किलोमीटर तक पहुँच सकती है।

11-अंतरिक्ष में आवाज़ नहीं सुनाई देती क्योंकि वहाँ ध्वनि के प्रसार के लिए हवा नहीं होती।

12-पृथ्वी हर सेकंड लगभग 30 किलोमीटर की गति से सूर्य की परिक्रमा करती है।

13-शार्क मछलियाँ डायनासोरों से भी पहले पृथ्वी पर मौजूद थीं।

14-ऑक्टोपस के तीन हृदय होते हैं।

15-एक दिन शुक्र ग्रह पर उसके एक वर्ष से भी अधिक समय का होता है।

16-मानव आँख लगभग 1 करोड़ रंगों में अंतर पहचान सकती है।

17-बिजली का एक साधारण बल्ब अपनी ऊर्जा का अधिकांश भाग प्रकाश नहीं बल्कि ऊष्मा के रूप में छोड़ता है।

18-चंद्रमा हर वर्ष पृथ्वी से लगभग 3.8 सेंटीमीटर दूर जा रहा है।

19-पौधे भी प्रकाश, स्पर्श और गुरुत्वाकर्षण के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं।

20-ब्रह्मांड में तारों की संख्या पृथ्वी के सभी समुद्र तटों पर मौजूद रेत के कणों से भी अधिक मानी जाती है।

निराशा नहीं, हल ढूंढो

-अभिनव

सच कहूँ तो आज के दौर में जीना किसी मानसिक जंग से कम नहीं है। कभी-कभी तो अकेले बैठकर सोचो, तो समझ ही नहीं आता कि हम एक इंसान के रूप में किस तरह के खोखले समाज की तरफ बढ़ चुके हैं। चारों तरफ एक अजीब सा पागलपन, अंधी दौड़ और वैचारिक अंधकार छाया हुआ है। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने बहुत पहले एक कड़वी लेकिन सौ फीसदी सच्ची बात कही थी "Never wrestle with a pig. You get dirty, and besides, the pig likes it." सूअर के साथ कभी कुश्ती मत लड़ो। तुम दोनों गंदे हो जाओगे, और सूअर को इसमें मज़ा आएगा। आज हमारे आस-पास का माहौल बिल्कुल ऐसा ही हो चुका है। जब पूरी व्यवस्था ही तर्कशून्यता, नफ़रत, चाटुकारिता और नकारात्मकता पर टिक जाए, तो एक सीधे, ईमानदार और समझदार इंसान के लिए समाज में अपनी पहचान बचाना तो दूर, खुद की मानसिक शांति को सुरक्षित रखना भी इस दौर का सबसे मुश्किल और थका देने वाला काम बन जाता है।

अगर इटली के उस पुराने, बेहद व्यावहारिक और कड़वे यथार्थवादी दार्शनिक निकोलॉ मैकियावेली की बातों को आज के संदर्भ में देखें, तो समझ आता है कि यह जो कुछ भी हमारे आस-पास घट रहा है, यह कोई इत्तेफाक या अचानक हुई घटना नहीं है। इसके पीछे एक बहुत ही सोची-समझी, नपी-तुली और क्रूर रणनीति काम कर रही है। आज की मुख्यधारा की मीडिया को ही देख लीजिए। इनका काम अब समाज को जागरूक करना या सच्ची खबरें दिखाना रह ही नहीं गया है; ये अब चौबीसों घंटे लोगों के दिमाग को काबू करने, डर और नफ़रत पैदा करने का एक संगठित धंधा चला रहे हैं। इन्होंने आम जनता का इस लेवल पर सामूहिक ब्रेनवॉश कर दिया है कि लोगों ने अपनी तार्किक सोच, अपने विवेक और अपनी बुद्धि से जैसे हमेशा के लिए तलाक ले लिया हो।

अब लोग किसी बात की गहराई में जाने, फैक्ट्स को परखने, डेटा देखने या सत्ता से सवाल उठाने की ज़हमत ही नहीं उठाते। मीडिया ने उनके दिमाग की खाली स्लेट पर जो झूठ, सनसनी और ज़हर भर दिया है, वे आँख बंद करके बस उसे 'मानने' में ही अपनी भलाई और राष्ट्रवाद समझते हैं।

हमारे देश के जो गिने-चुने लोग आज भी तर्कशीलता, वैज्ञानिक सोच, संविधान और रीज़न की बात करते हैं, वे सिस्टम में बैठे नेताओं, बिके हुए गोदी मीडिया और बड़े-बड़े नौकरशाहों (ब्यूरोक्रेट्स) के इस खतरनाक गठजोड़ को देखकर अंदर से बेहद परेशान, डरे हुए और बेबस महसूस करते हैं। उन्हें समझ नहीं आता कि इस सामूहिक चेतनाहीनता से देश को कैसे निकाला जाए।

और सबसे मजेदार बात यह है कि यह ढोंग और पाखंड सिर्फ हमारे देश की सीमाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि आदि दुनिया का यही बदसूरत हाल है। हम सब अपनी आँखों से देख रहे हैं कि जो बड़े-बड़े ताकतवर देश खुद को मानवाधिकारों, आज़ादी और लोकतंत्र का सबसे बड़ा ठेकेदार और मसीहा बताते थे, वे अंदर से कितने ज़्यादा खोखले, लालची और क्रूर हैं। अभी हाल ही में जो 'एपस्टीन फाइल्स' (Epstein Files) के सनसनीखेज खुलासे सामने आए हैं, उन्होंने तो इन वैश्विक महाशक्तियों के चेहरे पर लगे बचे-खुचे सफेदपोश नकाब भी नोंचकर फेंक दिए हैं। इन फाइलों के पन्नों को देखकर रूह कांप जाती है और इंसानियत पर से भरोसा उठने लगता है कि जो देश बड़े-बड़े मंचों पर बैठकर दुनिया को शांति, इंसानियत और हकों का पाठ पढ़ाते थे, वे खुद पर्दे के पीछे कितने बड़े 'ह्यूमन राइट्स वॉयलेटर' रहे हैं और किस तरह के घिनौने अपराधों और दलदल में डूबे हुए हैं। उन्होंने सिर्फ अपने हथियारों के धंधे और राजनीतिक फायदे के लिए न जाने कितने देशों को बर्बाद कर दिया और लाखों मासूमों की जिंदगियों से खिलवाड़ किया है।

आज दुनिया के बड़े-बड़े देशों के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री किसी सम्मानित, गंभीर और दूरदर्शी लीडर की तरह नहीं, बल्कि सड़क के गुंडों के किसी गैंग की तरह बर्ताव कर रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय राजनीति अब कूटनीति या ग्लोबल पीस की बात नहीं रही, यह पूरी तरह से एक अंतरराष्ट्रीय 'गैंग वॉर' में बदल चुकी है जहाँ हर कोई सिर्फ अपनी ताकत, पैसे और हथियारों

के दम पर दूसरे को कुचलना और अपनी दादागिरी चलाना चाहता है।

इस पूरे सड़े हुए निज़ाम को बचाए रखने और सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए देश और दुनिया भर में 'अंधभक्तों की एक ट्रोल आर्मी' खड़ी की गई है। यह आर्मी बिना पैसों के, सिर्फ अपने दिमाग के अंधेपन के कारण, इस तानाशाही व्यवस्था के लिए एक इंसानी सुरक्षा कवच का काम करती है। सत्ता में बैठे मगरमच्छों को खुद आकर कभी आपकी आवाज़ दबाने या आपसे लड़ने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती; यह ट्रोल फौज खुद-ब-खुद आपके ऊपर भेड़ियों की तरह इंटरनेट से लेकर सड़क तक टूट पड़ती है। जैसे ही कोई पढ़ा-लिखा विवेकशील इंसान समाज में न्याय की, वैज्ञानिक दृष्टिकोण की, स्वास्थ्य और बुनियादी अधिकारों की या फिर युवाओं के साथ हो रहे खिलवाड़ जैसे कि पेपर लीक जैसे गंभीर मुद्दों पर बात करेगा, ये लोग तुरंत एकजुट होकर उसे देशद्रोही, गद्दार या नकारात्मक मानसिकता का घोषित कर देंगे और तर्क का जवाब गाली, धमकियों और निजी हमलों से देंगे। इनका अंतिम मकसद सिर्फ एक ही है–समाज में इतना डर और कीचड़ फैला देना कि हर वह आवाज़ खुद-ब-खुद खामोश हो जाए जो सच को देखने और दिखाने की हिम्मत रखती है।

इस वैचारिक तानाशाही और सड़ी हुई व्यवस्था का सबसे दर्दनाक, भयानक और रूला देने वाला असर हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था और हमारे मासूम युवाओं पर पड़ रहा है। देश के लाखों-करोड़ों बच्चे जो दिन-रात एक करके, भूखे पेट रहकर, अपने गरीब माता-पिता के खून-पसीने की गाढ़ी कमाई के पैसे कोचिंगों में फूंककर बड़े-बड़े सपने देखते हैं कि वे मेहनत करेंगे और एक दिन डॉक्टर, इंजीनियर, साइंटिस्ट, लॉयर या सिविल सर्वेंट बनकर देश की सेवा करेंगे और अपना जीवन सुधारेंगे–उन्हें यह भ्रष्ट सिस्टम रोज़ एक नया मानसिक और भावनात्मक दर्द देता है। हर दूसरी परीक्षा का पेपर लीक हो जाना, सालों-साल वैकेंसियों का न आना, और जब युवा तंग आकर अपने हक के लिए शांति से सड़क पर उतरें तो उन पर जानवरों की तरह लाठियां बरसाना, उन्हें जेलों में डालना और उनकी वास्तविक तकलीफ़ों को पूरी तरह अनसुना करके रफा-दफा कर देना, आज के सिस्टम का परमानेंट करैक्टर बन चुका है।

यह असल में एक ऐसी अघोषित डिक्टेटरशिप (तानाशाही) की ज़मीन तैयार की जा रही है जहाँ आने वाली पीढ़ी मानसिक रूप से इतनी टूट जाए कि कोई सवाल पूछने वाला ही न बचे; बस रीढ़विहीन होकर, आँखें मूंदकर सत्ता की जय-जयकार करने वाले गुलाम पैदा होते रहें।

अब सबसे बड़ा प्रश्न यह उठता है कि इस घुटन भरे, बेईमान और अंधकारमयी माहौल में हम जैसे लोग, जो आज भी तर्क और इंसानियत में यकीन रखते हैं, करें तो क्या करें? सबसे पहली रणनीति यह अपनाओ कि इन्हें कभी भी सीधे मुँह यह मत बोलो कि "तुम गलत हो या तुम्हारा सोचना बकवास है।" ऐसा कहते ही उनका वैचारिक अहंकार जाग जाता है और वे आक्रामक हो जाते हैं। इसके बजाय इनके सामने बहुत मासूम और अनजान बनकर सवाल पूछना शुरू करो, जिसे सुकराती तरीका भी कहते हैं। जैसे अगर कोई आपके सामने चीख-चीखकर कहे कि देश में सब कुछ बहुत अद्भुत और परफेक्ट चल रहा है, तो उससे सीधे बहस मत करो कि तुम अंधभक्त हो। उसके सामने बहुत सहजता से बैठो और पूछो कि "भाई, बात तो तुम्हारी सही है, लेकिन एक बात मुझे समझ नहीं आई कि अगर सब कुछ इतना परफेक्ट और पारदर्शी है, तो हमारे देश के लाखों बच्चों के पेपर बार-बार लीक क्यों हो रहे हैं? उन गरीब माँ-बाप के आंसुओं का जिम्मेदार कौन है? तुम्हें क्या लगता है, इसमें कहाँ कमी रह गई?" जब आप सीधे आरोप लगाने के बजाय सवाल पूछते हैं, तो सामने वाले का दिमाग Defensive होने के बजाय थोड़ा सा सोचने के लिए मजबूर होता है, और यही साइंटिफिक टेंपरामेंट की पहली शुरुआत है।

दूसरी बात, राजनीति, धर्म या राष्ट्रवाद जैसे बड़े, उलझे हुए और मीडिया द्वारा फैलाए गए संवेदनशील विषयों पर बात करके अपना खून जलाने के बजाय, हमेशा उन मुद्दों को बातचीत के केंद्र में लाओ जो सीधे उनके खुद के घर, पेट और जेब को प्रभावित करते हैं–जैसे बेकाबू महंगाई, उनके बच्चों के स्कूलों की महंगी फीस, अस्पतालों का बुरा हाल और नौकरियों की कमी। जब किसी अंधभक्त का अपना सगा बच्चा इस सड़े हुए सिस्टम और पेपर लीक का शिकार होकर डिप्रेशन में घर बैठता है, तब यथार्थ का जो करारा थप्पड़ पड़ता है, उसकी गूँज गोदी मीडिया के चौबीसों घंटे के झूठ से कहीं ज़्यादा तेज़ होती है और उसका भरभराकर

गिरता हुआ भ्रम कोई नहीं बचा पाता।

इसके अलावा, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अपनी मानसिक और आंतरिक ऊर्जा को दुनिया का सबसे कीमती रिसोर्स समझो। इसे हर किसी ऐरे-गैरे इंसान पर या सोशल मीडिया के कमेंट बॉक्स में ज़ाया मत करो। जहाँ भी तुम्हें बातचीत के पहले दो मिनट में लग जाए कि सामने वाला इंसान दिमाग से पूरी तरह दीवार की तरह अड़ियल हो चुका है और सिर्फ अपनी बात थोप रहा है, वहाँ चुपचाप एक गहरी मुस्कान के साथ हाथ जोड़ लो, उसकी हाँ में हाँ मिलाओ और वहाँ से आगे बढ़ जाओ। यह तुम्हारी कमजोरी या हार नहीं है, बल्कि उसके साथ बहस करके अपनी ऊर्जा नष्ट करने की वजह चुप रहना आपकी समझदारी है। तुमने उस इंसान को वही चारा दे दिया जो उसका मीडिया-प्रेरित झूठा अहंकार चाहता था, वह अपनी नकली जीत की खुशी में मग्न रहेगा और तुम बिना अपनी मानसिक ऊर्जा खोए, अपनी शांति के साथ सुरक्षित बाहर निकल जाओगे।

मैकियावेली हमेशा कहता था कि जब समाज में हर तरफ से उफनती हुई गंदी और अराजक नदी बह रही हो, तो तुम अकेले खड़े होकर उस पूरी नदी के बहाव के रुख को तुरंत नहीं मोड़ सकते; ऐसा करना मूर्खता होगी। लेकिन उस गंदे और बदबूदार माहौल के बीच अपने दिमाग, अपने विचारों और अपनी चेतना के चारों तरफ एक मजबूत सुरक्षात्मक बांध (Mental Shield) बनाना पूरी तरह तुम्हारे खुद के हाथ में है। अंधभक्तों की इस फौज के सामने चुप रहकर सही समय पर पीछे हट जाना असल में अपनी हार मानना नहीं, बल्कि अपनी मानसिक शांति, अपने कीमती समय और अपनी तर्कशील चेतना को ज़िंदा रखने का इस दौर का सबसे बड़ा और आखिरी हथियार है। निराशा के गर्त में डूबने के बजाय, अपनी ज़मीन को मजबूत करो, अपने काम को इतनी शिद्दत से करो कि तुम्हारी ताकत बढ़े, समाज में जो लोग आज भी रैशनल और तार्किक सोचते हैं उनका एक छोटा लेकिन मजबूत नेटवर्क (Eco-system) बनाओ ताकि तुम्हें मानसिक संबल मिले, और सबसे बड़ी बात-आने वाली पीढ़ी के बच्चों में 'क्यों', 'कैसे' और 'क्या' यानी सवाल पूछने के बीज बोते रहो। यही इस गहरी वैचारिक तानाशाही और अंधकार के खिलाफ हमारा सबसे बड़ा, सबसे खामोश और सबसे अचूक रेजिस्टेंस (प्रतिरोध) होगा।

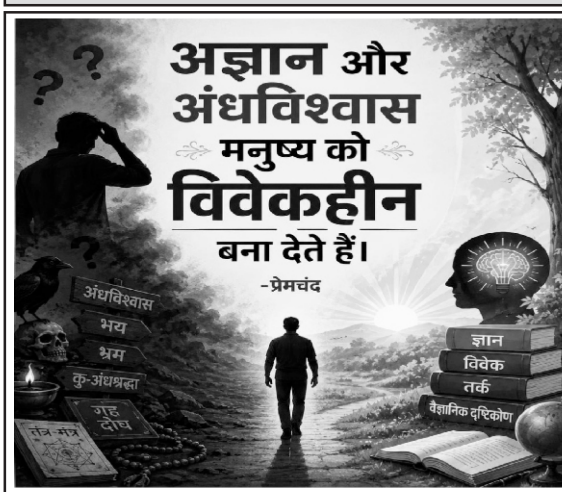
अभिव्यक्ति की आजादी

उनको लगता है
कि -
चुप रहने में ही भलाई है,
ज्यादा बोले जो अगर
फिर तो केवल ....
रूलाई है

जाने कौन सी धाराएं लगा
घेर लिए जाओगे
और -
हक की बात कहने पर भी
देश-द्रोही
अथवा
गद्दार बता
झूठे ही धर लिए जाओगे

कि -
अभिव्यक्ति की आजादी!
बस इतनी ही है शायद
कि अगर ...
शांति से जीना है
तो चुप रहे रहना है ।

-रोज़लीन
करनाल (हरियाणा)



आवारा भीड़ के खतरे

-हरिशंकर परसाई

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक हरिशंकर परसाई का यह लेख आज भी प्रासंगिक है, यद्यपि यह लेख उन्होंने 1991 में लिखा था

आज युवक-युवतियों के सामने आस्था का संकट है। सब बड़े आदर्श उनके सामने नंगे हो गए हैं। आदर्शों, सिद्धांतों, नैतिकताओं की धज्जियाँ उड़ते वे देखते हैं। वे धूर्तता, अनैतिकता, बेईमानी, नीचता को अपने सामने सफल एवं सार्थक होते देखते हैं। मूल्यों का संकट भी उनके सामने है। सब तरफ मूल्यहीनता उन्हें दिखती है। बाजार से लेकर धर्मस्थल तक। वे किस पर आस्था जमाएँ और किस के पद चिन्हों पर चलें? किन मूल्यों को मानें?

यूरोप में दूसरे महायुद्ध के दौरान जो पीढ़ी पैदा हुई उसे 'लास्ट जनरेशन' (खोई हुई पीढ़ी) का कहा जाता है। युद्ध के दौरान अभाव, भुखमरी, शिक्षा चिकित्सा की ठीक व्यवस्था नहीं। युद्ध में सब बड़े लगे हैं, तो बच्चों की परवाह करने वाले नहीं। बच्चों के बाप और बड़े भाई युद्ध में मारे गए। घर का, संपत्ति का, रोजगार का नाश हुआ। जीवन मूल्यों का नाश हुआ। ऐसे में बिना उचित शिक्षा, संस्कार, भोजन कपड़े के विनाश और मूल्यहीनता के बीज जो पीढ़ी बनकर जवान हुई, तो खोई हुई पीढ़ी इसके पास निराशा, अंधकार, असुरक्षा, अभाव, मूल्यहीनता के सिवाय कुछ नहीं था। विश्वास टूट गए थे। यह पीढ़ी निराश, विध्वंसवादी, अराजक, उपद्रवी, नकारवादी हुई। अंग्रेज लेखक जार्ज ओसबर्न ने इस क्रुद्ध पीढ़ी पर नाटक लिखा था जो बहुत पढ़ा गया और उस पर फिल्म भी बनी। नाटक का नाम 'लुक बैक इन एंगर'। मगर यह सिलसिला यूरोप के फिर से व्यवस्थित और संपन्न होने पर भी चलता रहा। कुछ युवक समाज के 'ड्राप आउट' हुए। 'वीट जनरेशन' हुई। औद्योगीकरण के बाद यूरोप में काफी प्रतिशत बेकारी है। ब्रिटेन में अठारह प्रतिशत बेकारी है। अमेरिका ने युद्ध नहीं भोगा। मगर व्यवस्था से असंतोष वहाँ पैदा हो हुआ। अमेरिका में भी लगभग बीस प्रतिशत बेकारी है। वहाँ एक ओर बेकारी से पीड़ित युवक है, तो दूसरी ओर अतिशय संपन्नता से पीड़ित युवक भी। जैसे यूरोप में वैसे ही अमेरिकी युवकों, युवतियों का असंतोष, विद्रोह, नशेबाजी, यौन स्वच्छंदता और विध्वंसवादिता में प्रगट हुआ। जहाँ तक नशीली वस्तुओं के सेवन के सवाल है, यह पश्चिम में तो है ही, भारत में भी खूब है। दिल्ली विश्वविद्यालय के पर्यवेक्षण के अनुसार दो साल पहले सत्तावन फीसदी छात्र और पैंतीस फीसदी छात्र नशे के आदी बन गए। दिल्ली तो महानगर है। छोटे शहरों में, कस्बों में नशे आ गए हैं। किसी-किसी पान की दुकान में नशा हर जगह मिल जाता है। 'स्मैक' और 'पॉट' टॉफी की तरह उपलब्ध हैं।

छात्रों-युवकों को क्रांति की, सामाजिक परिवर्तन की शक्ति मानते हैं। सही मानते हैं। अगर छात्रों युवकों में विचार हो, दिशा हो संगठन हो और साकारात्मक उत्साह हो। वे अपने से ऊपर की पीढ़ी की बुराईयों को समझें तो उन्हीं बुराईयों के उत्तराधिकारी न बने, उनमें अपनी ओर से दूसरी बुराईयाँ मिलाकर पतन की परंपरा को आगे न बढ़ाएँ। सिर्फ आक्रोश तो आत्म क्षय करता है। एक हर्बर्ट मार्क्यूस चिंतक हो गए हैं, जो सदी के छठवें दशक में बहुत लोकप्रिय हो गए थे। वे 'स्टूडेंट पावर' में विश्वास करते थे। मानते हैं कि छात्र क्रांति कर सकते हैं। वैसे सही बात यह है कि अकेले छात्र क्रांति नहीं कर सकते। उन्हें समाज के दूसरे वर्गों को शिक्षित करके चेतनाशील बनाकर संघर्ष में साथ लाना होगा। लक्ष्य निर्धारित करना होगा। आखिर क्या बदलना है यह तो तय हो। अमेरिका में हर्बर्ट मार्क्यूस से प्रेरणा पाकर छात्रों ने नाटक ही किए। हो ची मिन्ह और चे गुएवारा के बड़े-बड़े चित्र लेकर जुलूस निकालना और भद्दी ,भौंड़ी, अश्लील हरकतें करना। अमेरिकी विश्विद्यालय की पत्रिकाओं में बेहद फूहड़ अश्लील चित्र और लेख कहानी। फ्रांस के छात्र अधिक गंभीर शिक्षित थे। राष्ट्रपति द गाल के समय छात्रों ने सोरोबोन विश्वविद्यायल में आंदोलन किया। लेखक ज्यां पाल सार्त्र ने उनका समर्थन किया। उनका नेता

कोहने बेंडी प्रबुद्ध और गंभीर युवक था। उनके लिए राजनैतिक क्रांति करना संभव नहीं था। फ्रांस के श्रमिक संगठनों ने उनका साथ नहीं दिया। पर उनकी माँगें ठोस थी जैसे शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन। अपने यहाँ जैसी नकल करने की छूट की क्रांतिकारी मांग उनकी नहीं थी। पाकिस्तान में भी एक छात्र नेता तारिक अली ने क्रांति की धूम मचाई। फिर वह लंदन चला गया।

युवकों का यह तर्क सही नहीं है कि जब सभी पतित हैं, तो हम क्यों नहीं हों। सब दलदल में फँसे हैं, तो जो नए लोग हैं, उन्हें उन लोगों को वहाँ से निकालना चाहिए। यह नहीं कि वे भी उसी दलदल में फँस जाएँ। दुनिया में जो क्रांतियाँ हुई हैं, सामाजिक परिवर्तन हुए हैं, उनमें युवकों की बड़ी भूमिका रही है। मगर जो पीढ़ी ऊपर की पीढ़ी की पतनशीलता अपना ले क्योंकि वह सुविधा की है और उसमें सुख है तो वह पीढ़ी कोई परिवर्तन नहीं कर सकती। ऐसे युवक हैं, जो क्रांतिकारिता का नाटक बहुत करते हैं, पर दहेज भरपूर ले लेते हैं। कारण बताते हैं-मैं तो दहेज को ठोकर मारता हूँ। पर पिताजी के सामने झुकना पड़ा। यदि युवकों के पास दिशा हो, संकल्पशीलता हो, संगठित संघर्ष हो तो वह परिवर्तन ला सकते हैं।

पर मैं देख रहा हूं एक नई पीढ़ी अपने से ऊपर की पीढ़ी से अधिक जड़ और दकियानूसी हो गई है। यह शायद हताशा से उत्पन्न भाग्यवाद के कारण हुआ है। अपने पिता से तत्ववादी, बुनियाद परस्त (फंडामेंटलिस्ट) लड़का है।

दिशाहीन, बेकार, हताश, नकारवादी, विध्वंसवादी बेकार युवकों की यह भीड़ खतरनाक होती है। इसका प्रयोग महत्वाकांक्षी खतरनाक विचारधारावाले व्यक्ति और समूह कर सकते हैं। इस भीड़ का उपयोग नेपोलियन, हिटलर और मुसोलिनी ने किया था। यह भीड़ धार्मिक उन्मादियों के पीछे चलने लगती है। यह भीड़ किसी भी ऐसे संगठन के साथ हो सकती है जो उनमें उन्माद और तनाव पैदा कर दे। फिर इस भीड़ से विध्वंसक काम कराए जा सकते हैं। यह भीड़ फासिस्टों का हथियार बन सकती है। हमारे देश में यह भीड़ बढ़ रही है। इसका उपयोग भी हो रहा है। आगे इस भीड़ का उपयोग सारे राष्ट्रीय और मानव मूल्यों के विनाश के लिए, लोकतंत्र के नाश के लिए करवाया जा सकता है।

समझने वाली बात

सुबह टैक्सी में बैठा तो उसने रेडियो चलाया हुआ था।

रेडियो पर घोषणा हुई अब सुनिए ज्ञान बिंदु फिर उद्घोषक बोला समस्त ब्रह्मांड की उत्पत्ति परम पिता ब्रह्मा से हुई है।

मैं सोचने लगा यह ज्ञान है या अज्ञान?

क्योंकि अगर संसार की उत्पत्ति के बारे में ब्रह्मा वाली कहानी या आदम हव्वा वाली कहानी को ज्ञान मान लिया जाए।

तो स्टीफन हॉकिंस चार्ल्स डार्विन आइंस्टीन और दूसरे वैज्ञानिकों की खोज तो फिर अज्ञान हुई।

हम अपने बच्चों को मूर्ख बनाने वाली बातें क्यों सिखा रहे हैं।

हम जानते हैं कि नौकरी के इंटरव्यू में या स्कूल कॉलेज की परीक्षा में संसार की उत्पत्ति के बारे में आदम हव्वा या ब्रह्मा की कहानी लिखने पर हमारा बच्चा फेल हो जाएगा।

वहां तो उसको सच्चाई लिखनी पड़ेगी धर्म ग्रंथों में बताई गई काल्पनिक कहानी नहीं।

फिर भी हम पता नहीं किस लालच में अपने बच्चों को मूर्ख बनाना जारी रखे हुए है।

सरकारी रेडियो और टीवी भी इस मूर्खता को फैलाने में मदद कर रहे हैं।

जबकि भारत के संविधान में नागरिकों के कर्तव्य में लिखा हुआ है कि हर नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह वैज्ञानिक चेतना का प्रसार करे।

एक बात अच्छे से समझ लीजिए अगर अपनी हालत बदलनी है तो वैज्ञानिक चेतना तर्क और सत्य को अपने जीवन और सोच में जगह देनी ही पड़ेगी।

– हिमांशु कुमार

भारतीय अर्थव्यवस्था : बढ़ता संकट और आम लोगों के सामने चुनौतियाँ

–राजेश मल्होत्रा

आज भारत दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में शुमार है। सरकार और बड़े–बड़े कारोबारी घराने विकास के आंकड़ों की खूब तारीफ करते हैं, लेकिन अगर हम आम लोगों के जीवन पर नजर डालें तो हकीकत कुछ और ही है। महंगाई, बेरोजगारी, घटती क्रय शक्ति और रुपये की कमजोरी ने लोगों की समस्याओं को और भी बढ़ा दिया है।

पिछले कुछ वर्षों में भारतीय रुपये का मूल्य डॉलर के मुकाबले लगातार घटता जा रहा है। एक समय डॉलर का मूल्य 60–70 रुपये के आसपास था, लेकिन अब यह 90 रुपये से ऊपर पहुंच गया है। रुपये की कमजोरी का सीधा असर आम लोगों के जीवन पर पड़ता है, क्योंकि भारत अपनी जरूरतों के लिए बड़ी मात्रा में तेल, मशीनरी और अन्य आवश्यक वस्तुओं का आयात करता है। रुपये के गिरने से ये सभी चीजें महंगी हो जाती हैं और महंगाई का बोझ आम जनता पर पड़ता है।

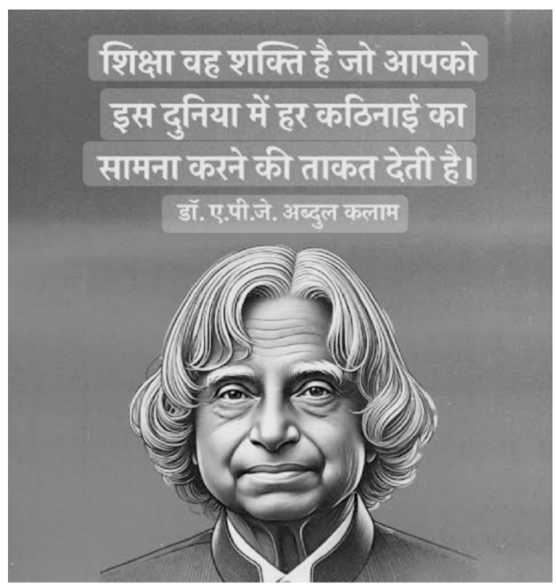
सरकारी आंकड़ों में मुद्रास्फीति दर 5 से 6 प्रतिशत के बीच दिखाई गई है, लेकिन खाना पकाने की गैस, खाद्य पदार्थों, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की कीमतों में वृद्धि आम परिवारों की आय से कहीं अधिक है। इसके चलते श्रमिकों, किसानों और मध्यम वर्ग की स्थिति बदतर होती जा रही है। जिन मध्यमवर्गीय परिवारों के पास पहले कुछ पैसे बच जाते थे, अब उन्हें अपनी दैनिक जरूरतों को पूरा करने में भी कठिनाई हो रही है और वे लगातार कर्ज में डूबते जा रहे हैं।

बेरोजगारी भी एक गंभीर समस्या बनी हुई है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद लाखों युवाओं को उपयुक्त रोजगार नहीं मिल पा रहे हैं। कई युवा संविदा, अस्थायी या कम वेतन वाली नौकरियों में काम करने के लिए मजबूर हैं। इससे न केवल परिवारों की आर्थिक सुरक्षा कमजोर होती है, बल्कि समाज में हताशा और असंतोष भी बढ़ता है।

इस बीच, देश के सबसे बड़े कॉरपोरेट घरानों की संपत्ति में तेजी से वृद्धि हुई है। विभिन्न रिपोर्टों से पता चलता है कि भारत में धन का एक बड़ा हिस्सा कुछ ही लोगों के हाथों में केंद्रित होता जा रहा है। दूसरी ओर, करोड़ों लोग अभी भी महंगाई, कर्ज और अनिश्चित रोजगार से जूझ रहे हैं। यह स्थिति दर्शाती है कि ''विकास'' के लाभ समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुंच रहे हैं।

सरकार लोगों को अधिक बचत करने और अनावश्यक खर्चों में कटौती करने की सलाह देती है। लेकिन सवाल यह है कि जब आम लोगों की आमदनी सीमित हो और दैनिक आवश्यकताएं महंगी होती जा रही हों, तो वे बचत कैसे कर सकते हैं? जब परिवार की आमदनी का एक बड़ा हिस्सा भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य और परिवहन पर खर्च हो जाता है, तो बचत करना एक चुनौती बन जाता है।

आज भारतीय अर्थव्यवस्था के सामने सबसे बड़ा सवाल यह है कि ''विकास'' का असली लाभ किसे मिल रहा है। यदि विकास के बावजूद आम लोगों का जीवन स्तर नहीं सुधर रहा है, बेरोजगारी कम नहीं हो रही है और महंगाई बढ़ती जा रही है, तो आर्थिक नीतियों की दिशा पर गंभीरता से विचार–विमर्श की आवश्यकता है। किसी देश की प्रगति का असली पैमाना यह होना चाहिए कि आम नागरिक कितना सुरक्षित, सुखी और सम्मानपूर्ण जीवन जी रहा है, न कि सिर्फ शेयर बाजार या कंपनियों के मुनाफे के आंकड़े।



अलविदा बशीर बद्र

लोग टूट जाते हैं एक घर बनाने में
तुम तरस नहीं खाते बस्तियाँ जलाने में

आम जन की जुबान पर मौजूद शायर बशीर बद्र (जन्म 15.02.1935) का 28 मई 2026 को इंतकाल हो गया। वे 91 वर्ष के थे। लंबे समय से वे उम्र से जुड़ी कई दिक्क़तों से जूझ रहे थे। स्मृतिलोप (डिमेंशिया) नामक बीमारी ने उनकी याद रखने और खुद को पहचानने की ताकत ख़त्म कर दी थी। पिछले कुछ वर्षों में कई बार उनके न रहने की बात फ़ैली लेकिन हर बार अफवाह साबित हुई। ईद-उल-अजहा के दिन उन्होंने इस दुनिया को अलविदा कहा।



बशीर बद्र (असल नाम सैय्यद मुहम्मद बशीर) कानपुर में पैदा हुए थे हालांकि उनका परिवार फ़ैज़ाबाद जिले का बाशिंदा था। दर्ज़ा तीन तक कानपुर के एक स्कूल में पढ़ाई करने के बाद पुलिस में मुलाज़िम अब्बाजान सैय्यद मुहम्मद नज़ीर के तबादले के कारण परिवार इटावा आ गया। यहाँ से उन्होंने हाईस्कूल पास किया। वालिद का इंतकाल हो जाने के कारण उन्होंने पढ़ाई छोड़कर पुलिस महकमे में नौकरी कर ली। जब परिस्थितियाँ अनुकूल हुईं तो उन्होंने नौकरी छोड़कर अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से उर्दू में एम. ए. और पीएच. डी. किया। कुछ दिन यहाँ अस्थाई तौर पर पढ़ाया। बाद में वे मेरठ विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में नियुक्त हो गए और यहीं रहते उनकी शायरी लोकप्रियता की सीढ़ियाँ चढ़ती गई। 1987 में मेरठ में भयंकर सांप्रदायिक दंगा हुआ। इस दंगे में उनका घर भी लूट लिया गया और आग के हवाले कर दिया गया। तब वे भोपाल में आ बसे और अंत तक यहीं रहे।

कई पुरस्कारों से नवाज़े गए शायर बशीर बद्र की ग़ज़लों के छः संग्रह छपे। उन्होंने आम फ़हम भाषा में अपनी शायरी लिखी। ब्रज, अवधी आदि बोलियों के लफ्ज़ उनकी शायरी में सहजता से चले आते हैं। वे मिलीजुली संस्कृति के शायर थे। पॉपुलर नज़्मों, ग़ज़लों के अलावा बशीर साहब ने संज़ीदा शायरी भी की है। वे आम-अवाम तक पहुँचने की हर मुमकिन कोशिश करने वाले शायर थे। तर्कशील सोसायटी ऐसे महबूब शायर के इंतक़ाल पर अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए अपनी ख़िराज-ए-अक़ीदत पेश करता है।

कोई ख़ाली हाथ नहीं है

-बशीर बद्र

कोई हाथ नहीं ख़ाली है
बाबा ये नगरी कैसी है
कोई किसी का दर्द न जाने
सबको अपनी अपनी पड़ी है
उसका भी कुछ हक़ है आख़िर
उसने मुझसे नफ़रत की है
जैसे सदियाँ बीत चुकी हों
फिर भी आधी रात अभी है
कैसे कटेगी तन्हा तन्हा
इतनी सारी उम्र पड़ी है
हम दोनों की खूब निभेगी
मैं भी दुखी हूँ वो भी दुखी है

गाँव मिट जायेगा शहर जल जायेगा

- बशीर बद्र

गाँव मिट जायेगा शहर जल जायेगा
ज़िन्दगी तेरा चेहरा बदल जायेगा
कुछ लिखो मर्सिया मसनवी या ग़ज़ल
कोई कागज़ हो पानी में गल जायेगा
अब उसी दिन लिखूँगा दुखों की ग़ज़ल
जब मेरा हाथ लोहे में ढल जायेगा
मैं अगर मुस्कुरा कर उन्हें देख लूँ
क़ातिलों का इरादा बदल जायेगा
आज सूरज का रुख है हमारी तरफ़
ये बदन मोम का है पिघल जायेगा
वक्त के आगे न टिक पायेगा कोई जुल्म भी,
एक दिन हर ताज मिट्टी में मिल जायेगा।

रीति-रिवाज़ और अंधविश्वास

-कुलजीत डँगर खेड़ां

मानव समाज की पहचान उसकी संस्कृति, परंपराओं और रीति-रिवाज़ों से होती है। हर देश, प्रदेश और समुदाय की अपनी अलग परंपराएँ होती हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती हैं। ये रीति-रिवाज़ समाज को एकता, अनुशासन और सांस्कृतिक पहचान प्रदान करते हैं। विवाह, जन्म, मृत्यु, त्योहार, और सामाजिक समारोहों में अनेक प्रकार की परंपराएँ निभाई जाती हैं। कई रीति-रिवाज़ों का संबंध सामाजिक व्यवस्था और मानवीय मूल्यों से होता है, लेकिन समय के साथ अनेक परंपराओं के साथ अंधविश्वास भी जुड़ गए। जब कोई परंपरा तर्क, विज्ञान और मानव हित से दूर होकर केवल डर, भ्रम या बिना सोचे-समझे विश्वास पर आधारित हो जाती है, तब वह अंधविश्वास का रूप ले लेती है।

अंधविश्वास वह विश्वास है जिसका कोई वैज्ञानिक या तार्किक आधार नहीं होता। यह मनुष्य के मन में भय, असुरक्षा और अज्ञानता के कारण पैदा होता है। पुराने समय में जब विज्ञान और शिक्षा का विकास कम था, तब लोग प्राकृतिक घटनाओं और जीवन की कठिनाइयों को समझ नहीं पाते थे। इसलिए उन्होंने अनेक कल्पनाएँ और मान्यताएँ बना लीं। धीरे-धीरे ये मान्यताएँ परंपरा का हिस्सा बन गईं और लोगों ने उन्हें बिना प्रश्न किए स्वीकार कर लिया।

भारतीय समाज में अनेक ऐसे रीति-रिवाज़ हैं जिनके साथ अंधविश्वास जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए, बिल्ली का रास्ता काटना अशुभ माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति कहीं जा रहा हो और सामने से बिल्ली निकल जाए, तो लोग कुछ समय रुक जाते हैं या अपना रास्ता बदल लेते हैं। जबकि वैज्ञानिक दृष्टि से इसका कोई आधार नहीं है। बिल्ली केवल एक जानवर है और उसके रास्ता काटने से किसी घटना का कोई संबंध नहीं होता।

इसी प्रकार छींक आने को भी कई लोग अशुभ मानते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी शुभ कार्य के लिए घर से निकल रहा हो और उसी समय किसी को छींक आ जाए, तो लोग कुछ देर रुक जाते हैं। वास्तव में छींक एक सामान्य शारीरिक प्रक्रिया है, जो नाक में धूल या अन्य कारणों से होती है। इसका भविष्य की घटनाओं से कोई संबंध नहीं है।

हमारे समाज में ग्रह-नक्षत्रों और ज्योतिष से जुड़े अंधविश्वास भी बहुत प्रचलित हैं। विवाह से पहले कुंडली मिलाना, ग्रह दोष के नाम पर महंगे अनुष्ठान करवाना, या किसी व्यक्ति को ''मनहूस''मान लेना आज भी देखने को मिलता है। कई बार लोग अपनी समस्याओं का समाधान मेहनत और समझदारी से करने के बजाय तांत्रिकों और बाबाओं के पास चले जाते हैं। इससे उनका आर्थिक और मानसिक शोषण होता है। कई ढोंगी लोग लोगों के डर और विश्वास का फायदा उठाकर उन्हें ठगते हैं।

कुछ रीति-रिवाज़ महिलाओं के प्रति भेदभाव को भी बढ़ावा देते हैं। उदाहरण के लिए, मासिक धर्म के दौरान महिलाओं को अपवित्र मानना, उन्हें रसोई या धार्मिक स्थल में प्रवेश से रोकना आज भी कई स्थानों पर प्रचलित है। विज्ञान के अनुसार मासिक धर्म एक प्राकृतिक जैविक प्रक्रिया है, लेकिन अज्ञानता और पुरानी मान्यताओं के कारण इसे गलत रूप में देखा जाता है। इसी तरह विधवा महिलाओं को शुभ कार्यों से दूर रखना भी एक अमानवीय अंधविश्वास है।

त्योहारों और धार्मिक आयोजनों में भी कई अंधविश्वास देखने को मिलते हैं। लोग मानते हैं कि यदि किसी विशेष दिन विशेष पूजा न की जाए तो दुर्भाग्य आ सकता है। कई लोग पशु बलि को धार्मिक परंपरा समझते हैं, जबकि यह क्रूरता और अंधविश्वास का उदाहरण है। कुछ लोग बीमारी होने पर डॉक्टर के पास जाने के बजाय झाड़-फूंक करवाते हैं। इससे रोग बढ़ जाता है और कभी-कभी जान का खतरा भी हो जाता है।

गांवों और छोटे कस्बों में टोना-टोटका और भूत-प्रेत से जुड़े अंधविश्वास अधिक देखने को मिलते हैं। कई बार किसी महिला को ''डायन'' कहकर प्रताड़ित किया जाता है। यह केवल अज्ञानता और सामाजिक पिछड़ेपन का परिणाम है। आज भी देश के कई हिस्सों में ऐसे मामलों के कारण हिंसा और अपराध होते हैं। यह मानवता के लिए शर्मनाक स्थिति है।

हालाँकि सभी रीति-रिवाज़ गलत नहीं होते। अनेक परंपराओं के पीछे वैज्ञानिक और सामाजिक कारण भी छिपे होते हैं। जैसे घर में प्रवेश से पहले हाथ-पैर धोना स्वच्छता से जुड़ा नियम था। सुबह जल्दी उठना, बड़ों का सम्मान करना,

त्योहारों पर सामूहिक मेल-जोल बढ़ाना जैसी परंपराएँ समाज को मजबूत बनाती हैं। समस्या तब उत्पन्न होती है जब लोग परंपराओं को बिना समझे अंधविश्वास बना लेते हैं।

अंधविश्वासों का समाज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे वैज्ञानिक सोच कमजोर होती है और लोग तर्क करने के बजाय डर के आधार पर निर्णय लेने लगते हैं। अंधविश्वास आर्थिक शोषण को बढ़ावा देते हैं, क्योंकि लोग तंत्र-मंत्र, तथाकथित बाबाओं और झूठे उपचारों पर पैसा खर्च करते हैं। कई बार अंधविश्वास के कारण लोग सही इलाज नहीं करवाते और गंभीर बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। महिलाओं, बच्चों और कमजोर वर्गों पर इसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है।

अंधविश्वास, समाज की प्रगति में भी बाधा बनते हैं। जब लोग मेहनत, शिक्षा और विज्ञान के बजाय भाग्य और चमत्कारों पर विश्वास करने लगते हैं, तब विकास रुक जाता है। एक वैज्ञानिक और आधुनिक समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है कि लोग हर बात को तर्क और प्रमाण की कसौटी पर परखें। शिक्षा ही अंधविश्वास को दूर करने का सबसे प्रभावी माध्यम है। जब लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होगा, तब वे सही और गलत में अंतर कर पाएँगे।

परिवार और विद्यालय की भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बच्चों को बचपन से ही तार्किक सोच, विज्ञान और मानवता के मूल्य सिखाने चाहिए। मीडिया और सामाजिक संगठनों को भी जागरूकता फैलानी चाहिए। कई समाज सुधारकों ने अंधविश्वासों के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने लोगों को समझाया कि धर्म और आस्था का अर्थ अंधविश्वास नहीं होता। सच्ची आस्था वह है जो मानवता, नैतिकता और विवेक को बढ़ावा दे।

आज के आधुनिक युग में विज्ञान ने अनेक रहस्यों को स्पष्ट कर दिया है। चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण, बीमारी, प्राकृतिक आपदाएँ और अन्य घटनाएँ अब वैज्ञानिक रूप से समझी जा सकती हैं। फिर भी अंधविश्वास पूरी तरह समाप्त नहीं हुए हैं। इसका कारण केवल अशिक्षा नहीं, बल्कि भय और सामाजिक दबाव भी है। कई लोग सच जानते हुए भी समाज के डर से पुरानी मान्यताओं का पालन करते रहते हैं।

हमें यह समझना होगा कि परंपराएँ समाज की धरोहर हैं, लेकिन हर परंपरा को समय और तर्क के अनुसार परखना आवश्यक है। जो रीति-रिवाज़ मानवता, समानता और वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा दें, उन्हें अपनाना चाहिए। जो परंपराएँ भेदभाव, डर और अज्ञानता फैलाती हैं, उन्हें छोड़ देना चाहिए। समाज तभी आगे बढ़ सकता है जब वह विवेक और विज्ञान को महत्व दे।

रीति-रिवाज़ मानव जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, लेकिन उनसे जुड़े अंधविश्वास समाज के लिए हानिकारक हो सकते हैं। अंधविश्वास मनुष्य की स्वतंत्र सोच और प्रगति में बाधा डालते हैं। इसलिए आवश्यक है कि हम परंपराओं का सम्मान करें, परंतु उन्हें तर्क और विज्ञान की कसौटी पर भी परखें। शिक्षा, जागरूकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के माध्यम से ही अंधविश्वासों को समाप्त किया जा सकता है। एक जागरूक और प्रगतिशील समाज वही होगा जो परंपरा और विज्ञान के बीच संतुलन बनाए रखे।



खोज ख़बर

भारतीय वैज्ञानिकों ने नई तकनीक विकसित की, जो ब्रेस्ट कैंसर के इलाज को बनाएगी अधिक सुरक्षित और प्रभावी

वैज्ञानिकों ने नैनो-आधारित जीन-साइलेंसिंग तकनीक विकसित की, जो एमयूसी1-टार्गेटेड एसआई आरएनए डिलीवरी से ब्रेस्ट कैंसर कोशिकाओं को निशाना बनाकर ट्यूमर वृद्धि को प्रभावी रूप से रोकती है। कैंसर के इलाज में लगातार नए-नए शोध हो रहे हैं, लेकिन अब पुणे के वैज्ञानिकों ने एक ऐसी तकनीक विकसित की है जो भविष्य में ब्रेस्ट कैंसर के इलाज को अधिक सुरक्षित और प्रभावी बना सकती है। यह शोध जीन-साइलेंसिंग और नैनोटेक्नोलॉजी पर आधारित है, जिसमें कैंसर पैदा करने वाले जीन को ही ''चुप'' कर दिया जाता है। इससे ट्यूमर की वृद्धि को रोका जा सकता है। यह शोध पुणे स्थित अगरकर रिसर्च इंस्टीटूट (एआरआई), जो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी), भारत सरकार के तहत एक स्वायत्त संस्थान है, के वैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। इस अध्ययन को अंतरराष्ट्रीय पत्रिका एडवांस्ड हेल्थकेयर मैटेरियल्स में प्रकाशित किया गया है।

नैनो कणों से दवा पहुंचाने की नई तकनीक

इस शोध में वैज्ञानिकों ने बहुत छोटे और सुरक्षित नैनो कणों का उपयोग किया है, जिन्हें मेसोपोरस सिलिका नैनोपार्टिकल्स कहा जाता है। इन कणों की खासियत यह है कि इनमें दवाओं या उपचारात्मक अणुओं को आसानी से भरा जा सकता है और यह शरीर के अंदर सुरक्षित तरीके से उन्हें कैंसर कोशिकाओं तक पहुंचा सकते हैं। इन नैनो कणों को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए वैज्ञानिकों ने इन्हें एक विशेष बायो-पॉलिमर और एक अप्टामर से जोड़ा है। यह अप्टामर एमयूसी1 नामक रिसेप्टर को पहचानता है, जो ब्रेस्ट कैंसर कोशिकाओं में अधिक मात्रा में पाया जाता है। इससे दवा सीधे कैंसर कोशिकाओं तक पहुंचती है और स्वस्थ कोशिकाओं को नुकसान कम होता है।

कैंसर को बढ़ाने वाले जीन को किया बंद

इस तकनीक की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसमें छोटे आरएनए अणुओं, जिन्हें एसआई आरएनए कहा जाता है, का उपयोग किया गया है। यह एसआई आरएनए कैंसर को बढ़ाने वाले दो महत्वपूर्ण जीन - एमसीएल-1 और सुविविन को बंद कर देते हैं। ये दोनों जीन कैंसर कोशिकाओं को मरने से बचाते हैं और ट्यूमर को बढ़ने में मदद करते हैं। जब ये जीन बंद हो जाते हैं, तो कैंसर कोशिकाएं खुद ही मरने लगती हैं, जिसे एपोप्टोसिस कहा जाता है। इस तरह ट्यूमर का बढ़ना धीरे-धीरे रुक जाता है।

स्मार्ट रिलीज सिस्टम की खासियत

इस नैनो तकनीक को और उन्नत बनाने के लिए वैज्ञानिकों ने इसमें एक विशेष ''स्मार्ट रिलीज सिस्टम'' भी जोड़ा है। यह सिस्टम शरीर में मौजूद ग्लूटाथियोन नामक पदार्थ को पहचानता है, जो कैंसर कोशिकाओं में अधिक पाया जाता है। जैसे ही यह नैनो कण कैंसर कोशिका के अंदर पहुंचते हैं, वे सक्रिय होकर अपना उपचारात्मक भार छोड़ देते हैं। इससे दवा केवल वहीं काम करती है जहां जरूरत होती है, जिससे शरीर के अन्य हिस्सों पर इसका दुष्प्रभाव बहुत कम हो जाता है।

प्रयोगशाला और जानवरों पर सफल परिणाम

प्रयोगशाला में किए गए परीक्षणों में इस तकनीक ने ब्रेस्ट कैंसर कोशिकाओं पर अच्छा असर दिखाया। वैज्ञानिकों ने पाया कि कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि रुक गई और कई कोशिकाएं नष्ट हो गईं। इसके अलावा एससीआईडी चूहों पर किए गए प्रयोगों में भी यह देखा गया कि यह नैनो कण ट्यूमर तक अच्छी तरह पहुंचते हैं और शरीर पर कोई गंभीर दुष्प्रभाव नहीं डालते। इससे यह संकेत मिलता है कि यह तकनीक सुरक्षित हो सकती है।

भविष्य की उम्मीद

यह शोध कैंसर के इलाज में एक नई दिशा की ओर इशारा करता है। पारंपरिक कीमोथेरेपी में जहां शरीर की स्वस्थ कोशिकाएं भी प्रभावित होती हैं, वहीं यह तकनीक केवल कैंसर कोशिकाओं को निशाना बनाती है। यदि आगे के शोध और क्लिनिकल ट्रायल सफल होते हैं, तो यह तकनीक ब्रेस्ट कैंसर के इलाज में एक बड़ी क्रांति ला सकती है और मरीजों को अधिक सुरक्षित व प्रभावी उपचार प्रदान कर सकती है।

समझाने का असर

-जसवीर सोनी

मानसिक रोगों के मामलों को सुलझाते हुए कई बार बहुत अजीब तरह के केस सामने आते हैं। कई बार लोगों की नासमझी या समझ की कमी के कारण ऐसे रिश्ते बन जाते हैं जिनमें आपसी कोई मेल नहीं होता। कई बार ये रिश्ते मजबूरी में भी बनते हैं, खासकर पति-पत्नी का रिश्ता। हमारे समाज में जब किसी लड़के और लड़की का रिश्ता तय किया जाता है, तो घर-बार, नौकरी, कारोबार, जमीन-जायदाद जैसी चीज़ें देखी जाती हैं, लेकिन बहुत सी अहम बातें नजरअंदाज कर दी जाती हैं। यह कहकर टाल दिया जाता है कि ''कोई बात नहीं, शादी के बाद सब ठीक हो जाएगा।''

लेकिन अक्सर ठीक होने की बजाय समस्याएं शादी के बाद ही शुरू होती हैं, खासकर उन्हीं बातों से जिन्हें पहले नजरअंदाज किया गया होता है।

ऐसा ही एक मामला मेरे पास आया,उस परिवार के रिश्तेदार तर्कशील साथी अजायब जलालाना के जानकार थे जिनकी बदौलत मेरे से संपर्क हुआ। इस केस में लड़के और लड़की के बीच कोई मेल नहीं था। नतीजा यह हुआ कि शादी के एक हफ्ते बाद ही बात तलाक तक पहुंच गई।

कहानी यह थी कि लड़के की उम्र लगभग 35 साल थी। उसके पास अच्छा घर-बार, आमदनी और सभी साधन थे। लड़की के पिता नहीं थे, उसकी परवरिश उसकी मां ने की थी। पिता की मृत्यु के बाद उसकी मां ने लड़की के चाचा से दूसरी शादी कर ली थी। चाचा शराब पीता था और लड़की की देखभाल में ज्यादा ध्यान नहीं देता था, इसलिए उसकी परवरिश मुख्य रूप से उसकी मां ने ही की।

दूसरी समस्या यह थी कि लड़की का कद बहुत छोटा था, लगभग 4 फुट, जबकि लड़के का कद करीब 5.5 फुट था और वह शारीरिक रूप से मजबूत था। दोनों के बीच शारीरिक रूप से कोई मेल नहीं था। लड़की कमजोर थी जबकि लड़का मजबूत और तंदुरुस्त था।

शादी के पहले ही दिन से समस्या शुरू हो गई। लड़की की मानसिक इच्छाएं तो सामान्य थीं, लेकिन वैवाहिक जीवन की शारीरिक जरूरतों को पूरा करने में उसका शरीर सक्षम नहीं था।

नतीजा यह हुआ कि दो दिन बाद ही लड़की को दौरे पड़ने लगे। परिवार उसे डॉक्टर के पास ले गया। डॉक्टर ने जांच के बाद बताया कि लड़की को कोई बीमारी नहीं है, वह बिल्कुल ठीक है। लेकिन अगले दिन फिर उसे दौरा पड़ा।

लड़की अपने बेडरूम में जाने से भी डरने लगी। उसे दूसरे कमरे में रखा गया, लेकिन वहां भी उसे दौरे पड़ने लगे और वह डरकर चिल्लाने लगती। जब परिवार ने उससे पूछा, तो वह कहने लगी कि कोई उसके बालों को छू रहा है, खींच रहा है और उसे धक्का दे रहा है।

इसके बाद परिवार उसे एक स्थानीय तथाकथित बाबा के पास ले गया। वहां उस बाबा के पाखंडी तरीकों के दौरान लड़की में एक ''पुरुष भूत'' के बोलने की बात कही और उसका नाम भी लिया। यहीं से परिवार में गलतफहमियां शुरू हो गईं। ससुराल वालों को शक हो गया कि शायद लड़की का पहले किसी से संबंध रहा होगा।

मामला इतना बढ़ गया कि दोनों परिवार अलग होने को तैयार हो गए। लड़की की मां भी उसे वहां छोड़ना नहीं चाहती थी।

फिर किसी रिश्तेदार के माध्यम से यह मामला मेरे पास आया। पूरी बात समझने के बाद असली कारण सामने आया। मैंने परिवार को समझाया कि यह सब मानसिक तनाव और दबाव के कारण हो रहा है, न कि किसी भूत-प्रेत का मामला है।

मैंने उसके ससुर सहित उन्हें तर्क से समझाया कि अगर बाबा किसी नरेश,दिनेश मर्द ''भूत'' को बुला सकता है, तो मैं भी आप में किसी महिला गीता, सीता का ''भूत'' बुला सकता हूं – ताकि उन्हें समझ आए कि यह सब मन का भ्रम है।

धीरे-धीरे परिवार को विश्वास में लिया गया। उन्हें बताया गया कि मानसिक तनाव में व्यक्ति इस तरह की बातें करने लगता है।

फिर काउंसलिंग की गई – लड़की की भी और लड़के की भी खासकर लड़के को समझाया गया कि वैवाहिक जीवन को समझदारी और संयम से चलाना चाहिए। उम्र अधिक होने के कारण उसकी शारीरिक जरूरतें ज्यादा थीं, लेकिन उसे लड़की की शारीरिक क्षमता के अनुसार ही व्यवहार करना

चाहिए।

लड़की की भी काउंसलिंग की गई। उसके स्वभाव में जिद और चिड़चिड़ापन था, जो उसकी परवरिश और अकेलेपन के कारण आया था।

असल समस्या यह थी कि दोनों परिवारों ने जरूरत के कारण रिश्ता तो कर लिया, लेकिन उनके बीच जो शारीरिक और मानसिक असमानता थी, उस पर ध्यान नहीं दिया गया।

शादी के बाद वही समस्या ''भूत'' का रूप लेकर सामने आई, और पाखंडी बाबा ने उसे और बढ़ा दिया। बात तलाक तक पहुंच गई।

लेकिन तर्कशील तरीके से समझाने और काउंसलिंग के बाद मामला सुलझ गया। आज दोनों परिवार खुश हैं और अपना जीवन सही तरीके से जी रहे हैं।

मो.: 9478776938

आंखे खोलो

–अरुण खामख्वाह

इस तस्वीर में दिख रहे शख्स का नाम विक्रम गांधी है, जो पेशे से एक फिल्ममेकर और पत्रकार हैं..

लेकिन साल 2011 में इन्होंने एक ऐसा अनोखा और हैरान कर देने वाला 'सोशल एक्सपेरिमेंट' किया, जिसने आध्यात्मिकता, बाबागिरी और धर्म के नाम पर हो रहे पाखंड की बधिया उधेड़ दी।



– विक्रम ने अपनी दाढ़ी–बाल बढ़ाए, भगवा वस्त्र पहने यानी आध्यात्मिक गुरु बन बैठा. खुद को एक प्रबुद्ध गुरु 'कुमारें' (Kumaré) के रूप में पेश किया.

वे अमेरिका के एरिजोना राज्य में गए और वहां योग और ध्यान सिखाने लगे।

आम जनमानस वो चाहे किसी भी देश का,आधुनिक हो..वो भी इन चक्करों में फंस ही जाता है।

– देखते ही देखते सैकड़ों लोग उनके अनुयायी बन गए. लोग उनके पैरों में गिरकर रोने लगे, अपनी जिंदगी के सबसे गहरे राज उनसे साझा करने लगे और उन्हें साक्षात भगवान मानने लगे।

जबकि विक्रम के पास कोई दैवीय शक्ति नहीं थी, वह सब कुछ कैमरे के सामने सिर्फ एक 'एक्ट' कर रहे थे।

विक्रम ने इन सब गतिविधियों को कैमरे में कैद किया..और डॉक्यूमेंट्री बना डाली।

– जब इस डॉक्यूमेंट्री के अंत में विक्रम ने अपने शिष्यों के सामने इस सच का खुलासा किया कि वे कोई गुरु नहीं बल्कि एक आम फिल्ममेकर हैं, तो जो सच निकलकर सामने आया, वही इस पूरे प्रयोग का सबसे बड़ा 'टर्निंग पॉइंट' है। अनुयायी इस बात को स्वीकार ही नही कर पा रहे थे कि वो एक फर्जी गुरु के सानिध्य में थे..वे इस बात पर टिके थे कि उन्हें शारीरिक,मानसिक और आर्थीक रूप से लाभ हुआ है।

यहाँ मुझे फ़िल्म 'गाइड' याद आई।

– विक्रम ने अपने शिष्यों को कोई नया ज्ञान नहीं दिया था। उन्होंने बस वही बातें दोहराईं जो लोग सुनना चाहते थे.जब लोगों के जीवन में सकारात्मक बदलाव आया, तो वह किसी 'गुरु' के चमत्कार से नहीं, बल्कि उन लोगों के अपने विश्वास और आंतरिक शक्ति की वजह से आया था।

– हम अक्सर अपनी समस्याओं का समाधान खुद के भीतर ढूंढने के बजाय किसी बाहरी चमत्कारी पुरुष या गुरु में तलाशने लगते हैं. यह प्रयोग साबित करता है कि शांति, खुशी और बदलाव की चाबी आपके खुद के पास है, किसी बाबा या गुरु के पास नहीं।

– यह एक्ट ये भी दिखाता है कि इंसानी मन कितना भोला और कमजोर हो सकता है, जिसे आसानी से बहकाया जा सकता है।

– यह प्रयोग किसी की आस्था का मज़ाक उड़ाने के लिए नहीं था, बल्कि यह हमारी आँखें खोलने के लिए था. किसी के पीछे आंखें बंद करके भागने से बेहतर है कि हम अपने भीतर को पहचानें, अपने गुरु खुद बने...!

डाक्यूमेंट्री प्राइम पर उपलब्ध है।

उत्तराखंड में चलाया गया तीन दिवसीय जागरूकता अभियान

संविधान के अनुच्छेद 51ए (एच) के अनुसार समाज में फैले अंधविश्वास, पाखंड, कुरीतियों के प्रति लोगों को वैज्ञानिक सोच के अनुसार जागरूक करने हेतु तीन दिवसीय अभियान चलाया गया। तीन दिवसीय अभियान में तर्कशील सोसाइटी पंजाब से साथी रामकुमार एवं साइंस फॉर सोसाइटी यूनाइटेड उत्तराखंड से गिरीश चंद्र एवं मदन मेहता शामिल रहे।

अभियान के पहले दिन 14 अप्रैल 2026 को डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जी की जयंती के अवसर पर रामनगर क्षेत्र के तीन स्थानों पर अंधविश्वास और पाखंड का पर्दाफाश करते हुए वैज्ञानिक ट्रिक पर आधारित जादू के शो का प्रदर्शन किया गया। अंबेडकर जयंती में उपस्थित सैकड़ों लोगों ने तालियां बजाकर वैज्ञानिक ट्रिक पर आधारित जादू के शो का उत्साहवर्धन किया।

अभियान के दूसरे दिन 15 अप्रैल 2026 को राजकीय इंटर कॉलेज मालधन में कक्षा 12 विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के मध्य वैज्ञानिक ट्रिक पर आधारित जादू का शो प्रदर्शित किया गया। लगभग 1 घंटे के कार्यक्रम मैं छात्र-छात्राओं ने वैज्ञानिक ट्रिक पर आधारित जादू के शो को सीखने की इच्छा व्यक्त की। कार्यक्रम के अंत में प्रधानाचार्य विनोद कुमार ने कहां की इस प्रकार के कार्यक्रम से समाज में व्याप्त अंधविश्वास को दूर करने में सहायता मिलेगी।

अभियान के तीसरे दिन 16 अप्रैल 2026 को किसान इंटर कॉलेज पीरुमदारा रामनगर नैनीताल और राजकीय इंटर कॉलेज गौजानी रामनगर नैनीताल में वैज्ञानिक ट्रिक पर आधारित जादू का शो दिखाया गया और बताया कि ढोंगी बाबा लोगों में स्वर्ग -नर्क, जादू- टोना, भूत और डायन का अंधविश्वास फैलाते हैं और अंधविश्वास फैला कर लोगों से बड़ी मोटी रकम इकट्ठा करते हैं। रेशनलिस्ट फेडरेशन ऑफ़ इंडिया नॉर्थ जोन द्वारा ऐसे ढोंगी बाबाओ को चुनौती दी गई अगर कोई बाबा सील बंद करेंसी नोट का क्रमांक पढ़कर बताएं तो उसे 5 लाख का नकद इनाम भारतीय रुपए में दिया जाएगा। कार्यक्रम के अंत में किसान इंटर कॉलेज पीरु मदारा के प्रधानाचार्य हरेंद्र चौहान जी ने रिफिन (RIFIN) का धन्यवाद और आभार प्रकट करते हुए कहा कि आज इस प्रकार के कार्यक्रमों की बहुत ज्यादा जरूरत है और हमें अंधविश्वास और पाखंड से संबंधित कई प्रकार की समस्याओं से कॉलेज में रूबरू होना पड़ता है। राजकीय इंटर कॉलेज गौसनी के प्रधानाचार्य जसीराम आर्य ने कहा कि सोसाइटी द्वारा पूर्व में भी वैज्ञानिक ट्रिक पर आधारित जादू का शो दिखाया गया था और इस कॉलेज के छात्र-छात्राओं द्वारा इस कार्यक्रम की सराहना की गई और कहां की कुछ छात्र इस प्रकार के ट्रिक को सीखना चाहते हैं।

तीन दिन तक चले अभियान का कुल निष्कर्ष यह है कि इस प्रकार की अभियान चलाकर लोगों में अंधविश्वास, पाखंड, कुरीतियां के प्रति जागरूकता फैलाने में मदद मिलती है और इस प्रकार के अभियान में शामिल लोगों को अपने प्रदर्शन को सुदृढ़ करने का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त होता हैं। अभियान के दौरान प्रधानाचार्य ,शिक्षकों ,और छात्र-छात्राओं में तर्कशील पथ पत्रिका का वितरण किया गया। तर्कशील पथ पत्रिका की गिनती बढ़ाने में तीन दिन का अभियान सफल रहा।

रिपोर्ट : गिरीश चंद्र
प्रवक्ता साइंस फॉर सोसाइटी यूनाइटेड उत्तराखंड

ग्रामीण एकल महिलाओं ने जाना 'चमत्कारों' के पीछे का विज्ञान

चिलगु, दलमा (झारखंड)ः सरायकेला-खरसावां ज़िले स्थित सोबरन स्मृति शिक्षापीठ में एकल नारी सशक्ति संगठन, झारखंड द्वारा अपने नेतृत्वकारी सदस्यों के लिए आयोजित राज्य स्तरीय क्षमता-वर्धन प्रशिक्षण कार्यशाला के दौरान अंधविश्वास उन्मूलन पर एक विशेष सत्र आयोजित किया गया। सत्र के दौरान झारखंड के 13 ज़िलों से महिलाओं की भागीदारी रही।

सत्र का संचालन हरियाणा विज्ञान मंच के विज्ञान संचारक सुभाष अनुराग ने किया। उन्होंने कई रोचक वैज्ञानिक प्रयोगों के माध्यम से उन तथाकथित ''चमत्कारों'' के पीछे छिपे वैज्ञानिक तथ्यों को महिलाओं के सामने सरल ढंग से प्रस्तुत किया, जिन्हें अक्सर ढोंगी बाबा और अंधविश्वास फैलाने वाले तत्व चमत्कार के रूप में प्रचारित करते हैं।

सत्र के बाद प्रतिभागी महिलाओं ने कहा कि आज उन्हें

समझ आया कि तथाकथित बाबाओं द्वारा किस तरह चालाकी और भ्रम पैदा कर लोगों को ठगा जाता है। उन्होंने माना कि ऐसे तथाकथित चमत्कार वास्तव में लोगों को गुमराह कर आर्थिक लाभ कमाने का माध्यम होते हैं।

झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में अंधविश्वास आज भी व्यापक रूप से फैला हुआ है, जिसका प्रभाव विशेष रूप से महिलाओं पर पड़ता है। कई बार महिलाएं न केवल इसका शिकार बनती हैं, बल्कि अनजाने में इसके प्रसार का हिस्सा भी बन जाती हैं। ऐसे में यह सत्र महिलाओं के बीच वैज्ञानिक सोच विकसित करने और अंधविश्वास के प्रति जागरूकता बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण साबित हुआ।

सत्र के दौरान एकल नारी सशक्ति संगठन के संस्थापक बिन्नी, संगठन से जुड़े कुमार दिलीप एवं विज्ञान संचारक विकास कुमार भी मौजूद रहे।

इसके अलावा प्रीति गुड़िया, परवाना खातून, सुहागिनी टुडू, मनीषा श्वेता मरांडी, सब्बा परवीन, अज़िमा खातून, पिंकी कुमारी, हीरा हांसदा, शिवानी बारीक, हिमानी महतो, मामोनी महतो, मिरु किस्कू, अनीता देवी, सुकुरमनी, मंजू, बबीता देवी आदि शामिल रही हैं।

रिपोर्ट : विकास कुमार

उत्क्रमित मध्य विद्यालय शहरबेड़ा में बच्चों ने जाना 'चमत्कारों' के पीछे का विज्ञान

झारखंड के सरायकेला-खरसावां ज़िले के चांडिल प्रखंड में स्थित उत्क्रमित मध्य विद्यालय, शहरबेड़ा में बच्चों के बीच "अंधविश्वास का पर्दाफाश" कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में कक्षा 6 से 8 तक के 100 से अधिक छात्र-छात्राओं ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

कार्यक्रम का संचालन हरियाणा विज्ञान मंच के वरिष्ठ विज्ञान संचारक ईश्वर नास्तिक और सुभाष अनुराग ने किया। उन्होंने विभिन्न रोचक वैज्ञानिक प्रयोगों के माध्यम से उन तथाकथित "चमत्कारों" का वैज्ञानिक सच बच्चों के सामने रखा, जिन्हें अक्सर ढोंगी बाबा और अंधविश्वास फैलाने वाले लोग चमत्कार के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

"कार्यक्रम के दौरान आग को 'खा जाना', जीभ के आर-पार त्रिशूल निकालना , मंत्रों के द्वारा आग लगाना, उंगली के सहारे भारी वस्तु को संतुलित करना, अग्नि स्नान, छलनी में पानी रोककर दिखाने जैसे रोचक प्रयोग प्रस्तुत किए गए। हर प्रयोग के पीछे छिपे वैज्ञानिक सिद्धांतों को सरल भाषा में समझाया गया, जिससे बच्चों ने जाना कि इन तथाकथित चमत्कारों के पीछे कोई अलौकिक शक्ति नहीं, बल्कि विज्ञान कार्य करता है।

इस अवसर पर बच्चों के बीच कुछ मनोवैज्ञानिक प्रयोग भी किए गए, जिनके माध्यम से उन्होंने समझा कि किस प्रकार भ्रम और मनोवैज्ञानिक प्रभावों का उपयोग कर लोगों को प्रभावित किया जाता है। बच्चों ने स्वयं भी कई प्रयोग करके उनकी सत्यता को परखा कार्यक्रम के दौरान बच्चों को surface tension (पृष्ठ तनाव), centre of gravity (गुरुत्व केंद्र) जैसे वैज्ञानिक सिद्धांतों को व्यावहारिक प्रयोगों के माध्यम से समझाया गया।

उल्लेखनीय है कि हरियाणा विज्ञान मंच के वरिष्ठ कार्यकर्ता ईश्वर नास्तिक और सुभाष अनुराग पिछले कई दशकों से विज्ञान संचारक के रूप में देशभर के स्कूलों, कॉलेजों और सामाजिक मंचों पर वैज्ञानिक प्रयोगों के माध्यम से वैज्ञानिक चेतना और तार्किक सोच को बढ़ावा देने का कार्य कर रहे हैं। वे इन दिनों झारखंड के चिल्गु चाकुलिया गांव स्थित सोबरन स्मृति शिक्षापीठ में आयोजित विज्ञान समर कैंप में सहयोगी के रूप में जुड़े हुए हैं।

कार्यक्रम में विद्यालय के शिक्षकगण के साथ विज्ञान संचारक विकास कुमार भी उपस्थित रहे।

पेशकश : गुरमीत अंबाला

आपकी प्रतिक्रिया

तर्कशील पथ का मई-जून 2026 का अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख अच्छे और उपयोगी हैं, लेकिन मुझे कुछ कमियां लगीं जिन्हें मैं आपके सामने रखना चाहता हूं।

पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर मार्क्स का मजदूरों के लिए कोटेशन है तथा अंदर मार्क्स, लिंकन, अंबेडकर, स्मिथ, गौर्की आदि के उद्धरण दिए गए हैं। इसी तरह माइकल फैराडे और चे ग्वेरा पर लेख भी पढ़ने को मिले। इन लेखों और उद्धरणों से श्रद्धा और प्रेरणा तो पैदा होती है, लेकिन वैज्ञानिक दृष्टिकोण उतना विकसित नहीं हो पाता।

मेरी राय में इन व्यक्तित्वों को केवल महान व्यक्तियों के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय इस रूप में समझाया जाना चाहिए कि वे अपने समय के समाज, विज्ञान और समस्याओं को कैसे देखते थे। उन्होंने किन मान्यताओं को चुनौती दी, तर्क और

प्रमाण का उपयोग कैसे किया, और आज के समाज को समझने में उनकी क्या भूमिका हो सकती है – इस पहलू पर अधिक जोर होना चाहिए।

पत्रिका की पहचान ''वैज्ञानिक चिंतन की आवाज'' है, तो केवल उद्धरण और प्रेरणात्मक बातें पर्याप्त नहीं हैं। आवश्यकता ऐसे लेखों की है जो पाठक के भीतर प्रश्न करने, विश्लेषण करने और वैज्ञानिक दृष्टि से समाज को समझने की क्षमता विकसित करें।

गौरव तोमर

मुझे मई–जून का तर्कशील पथ पढ़ने को मिला। इसके शीर्षक पृष्ठ और अंदर के लेखों में 1 मई के मज़दूर संघर्ष की कहानी बयां बहुत अच्छे तरीके से किया गया है। सिज़ोफ्रेनिया, नग पहनने का पाखंड, क्या मृत्यु के बाद जीवन है जैसे विषयों पर लेख अच्छे थे और मैंने बहुत कुछ सीखा। सबसे अच्छा हिस्सा इस्लाम और वैज्ञानिक सोच पर तुलनात्मक विचार चर्चा थी। अगले अंक में इस चर्चा में और क्या होगा, यह जानने के लिए मैं बहुत उत्सुक हूं। आपका बहुत बहुत धन्यवाद।

विनोद बारेका

मैं लंबे समय से तर्कशील पथ पत्रिका पढ़ रहा हूँ। पत्रिका बहुत अच्छी है। यह ज्ञान और विज्ञान से भरपूर है। इसमें बच्चों के लिए पढ़ने की सामग्री बहुत कम है। अगर समाज को सही दिशा दिखानी है तो इसकी शुरुआत बच्चों से ही होनी चाहिए। इसलिए, मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि बच्चों के स्तर के अनुसार उनके लिए अधिक सामग्री उपलब्ध कराएँ।

दिनेश कुमार
सादुलशहर (राजस्थान)

'तर्कशील पथ' पढ़कर आपने जो प्रोत्साहन दिया है, उसके लिए आप सभी का धन्यवाद। हमारी संपादकीय टीम गौरव तोमर जी और दिनेश जी द्वारा पत्रिका में सुधार के लिए दिए गए सुझावों का तहे दिल से स्वागत करती है। एक समझदार पाठक ही हमें सही मार्ग दिखा सकता है, इसलिए हम आपके सुझावों पर आगामी समय में जरूर पालन करेंगे। हमें आशा है कि आप इसी तरह सुझाव देते रहेंगे, जिससे पत्रिका की गुणवत्ता में निरंतर वृद्धि होगी। अन्य पाठकों से भी अनुरोध है कि वे पत्रिका के कवर पेज नंबर दो पर दिए गए मोबाइल नंबरों पर अपनी प्रतिक्रिया भेजते रहें। धन्यवाद।

संपादकीय मंडल, तर्कशील पथ

मुक्तिधाट के मुर्दे

– वीरेंदर भाटिया

1. मरे हुए को मत मारो

मुर्दे ने चारों तरफ नज़र घुमाई। आस पास का दृश्य देखकर कर मुर्दा धक्क से रह गया। उसने दूसरे मुर्दे से कहा। हर तरफ लाशें ही लाशें, मुर्दे ही मुर्दे। कितना वीभत्स दृश्य है यह।

दूसरे मुर्दे ने चुटकी ली। चारों तरफ हिन्दू ही हिन्दू सोये हैं। जगाओ इन्हें।

पहला मुर्दा सुबक पड़ा। मरे हुए को और मत मारो प्लीज। हाथ जोड़ता हूँ मैं तुम्हारे।

अरे मैं तो हमारी मूर्खताओं का आईना दिखा रहा हूं कि हिन्दू जगाने की बजाय काश हमने सरकार को जगाया होता।

2. असल धर्म

सबै मानुष एकौ जात। यह दर्शन जीवन भर पढता रहा लेकिन समझ आज आ रहा है ।

क्यूं ? आज कैसे?

मुझे न जाने किस जात किस धर्म के आदमी ने प्लाज़्मा दिया। कौन जात कौन धर्म का आदमी उठाकर लाया। कौन चिता को मुखाग्नि देगा। कुछ भी तो नही पता। धर्म की सीमाओं के बाहर ही असली धर्म है यह आज समझा हूं।

तो क्या धर्म का ज्ञान हम मरते हुए ही प्राप्त करते हैं? दूसरे ने अति गम्भीर सवाल किया।

हां शायद। असल धर्म हमें मरने पर ही समझ आता है। काश यही बातें जीते जी समझ आई होतीं।

3. मरा हुआ जमीर

जीवन मे लगता है कुछ भी सकारात्मक करके नही मरे। बहुत बोझ महसूस हो रहा है जमीर पर। एक मुर्दे ने दूसरे से कहा।

दूसरा मुर्दा दार्शनिक हो गया। बोला, यह भी अजब बात है यार। आदमी मर रहा होता है तब ही उसका जमीर जिंदा होता है। जीते जी यह मरा हुआ ही क्यों रहता है?

4. समझ कब आती है?

यार मरने के बाद मनुष्यता, धर्म और सरकारी निकम्मा पन ज्यादा साफ समझ आने लगा है। एक मुर्दे ने दूसरे से कहा।

दुआ कर कि पूरे देश को यह सब जीते जी समझ आने लगे। मरकर कुछ भी समझ आने का कोई औचित्य नही।

पाठक होने का महत्व

–जसवंत मोहाली

आमतौर पर लेखक का समाज में विशेष दर्जा समझा जाता है, पर पाठक जन साधारण होता है। किसी लेखक की समाज में कितनी पहचान है, यह बात लेखक को उसके पाठकों की गिनती और प्रतिक्रिया से पता चलती है। यह बात पाठक होने का महत्व दर्शाती है। जिन समाजों में साहित्य पढ़ने की रुचि रखने वाले बड़ी संख्या में होते हैं, वे विकसित देशों की सूची में भले न आएँ, पर समझदार और सभ्य देशों की सूची में ज़रूर आ जाते हैं।

किताबें पढ़ना अर्थात पाठक होना किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में बड़ा योगदान देता है। मानसिक और शारीरिक तंदुरुस्ती में भी किताबों की बड़ी भूमिका होती है। यहाँ तक कि शारीरिक दर्द से राहत के लिए दर्दनिवारक गोलियों पर निर्भर मरीजों के लिए साहित्य पढ़ना एक थेरेपी की तरह इस्तेमाल किया जाता है। मानसिक उलझनों को हल करने के लिए भी साहित्य काफी सहायक होता है। पंजाबी के सुप्रसिद्ध लेखक जंगबहादुर गोयल की लिखी पुस्तक ''साहित्य संजीवनी'' इसके बारे में तथ्यों सहित प्रकाश डालती है। इसमें उनका निजी अनुभव भी शामिल है। खासतौर पर मानसिक सेहत के लिए साहित्य की भूमिका पर लिखी किताबों और बनी संस्थाओं का विवरण भी इस पुस्तक में दर्ज है।

निजी स्वास्थ्य से भी अधिक सामाजिक स्वास्थ्य में किताबें पढ़ने की भूमिका का महत्व है। उपर वर्णित पुस्तक साहित्य संजीवनी से यह पैरा साहित्य के सामाजिक और राजनीतिक महत्व को बताता है – ''इंग्लैंड के प्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स ने अपने उपन्यास डेविड कॉपरफ़ील्ड और ओलिवर ट्विस्ट के माध्यम से बाल मजदूरी के खिलाफ ज़बरदस्त जनमत तैयार किया और उस समय की सरकार को एक एक्ट पास कर बाल मजदूरी पर प्रतिबंध लगाना पड़ा। डिकेन्स को इंग्लैंड की संसद का तीसरा सदन कहा जाता था। उनके उपन्यासों के प्रभाव में ब्रिटिश संसद को फैक्टरी मजदूरों के लिए घर, पेंशन और स्वास्थ्य सेवाओं की गारंटी तथा बेसहारा महिलाओं के लिए रोजगार जैसे चौदह नए कानून बनाने पड़े।''

इंग्लैंड में ऐसा जनमत बन पाना इसलिए संभव हुआ क्योंकि वहाँ किताबें पढ़ने वालों की बड़ी संख्या मौजूद थी। ''दक्षिणी अमेरिका में गुलामी प्रथा को कानूनी मान्यता प्राप्त थी। एक अमेरिकी लेखिका द्वारा लिखे गए उपन्यास ''अंकल टॉम ज केबिन'' ने गुलामी प्रथा के विरुद्ध ज़ोरदार जनआंदोलन पैदा किया, जिसके परिणामस्वरूप सिविल वॉर शुरू हुई और आधुनिक यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका के अस्तित्व का आधार बना।''

इसी पुस्तक में से – ''रूस में 1905 की क्रांति असफल हो जाने के बाद मैक्सिम गोर्की के उपन्यास ''द मदर'' ने जनसंघर्ष की बुझती लौ में फिर से तेल डालने का काम किया और उसे नई ऊर्जा प्रदान की। इस उपन्यास के बारे में महान लेनिन ने कहा था, यह पुस्तक उस समय आई जब इसकी बहुत आवश्यकता थी।''

यह देखा गया है कि अधिक धार्मिक लोग किताबें कम ही पढ़ते हैं। वे अपनी एक ही धार्मिक पुस्तक में सभी सवालों के जवाब खोजने की कोशिश करते हैं। इसी कारण उन्हें लगता रहता है कि उन्होंने सब कुछ जान लिया है। जबकि सामान्य पाठक को कई किताबें पढ़ने के बाद भी लगता है कि अभी बहुत कुछ जानना बाकी है। पंजाब में इतिहास के प्रोफेसर सुभाष परिहार के फेसबुक पेज से – एक इतालवी दार्शनिक ने कहा है, ''उस आदमी से बचो जिसने पूरी ज़िंदगी में केवल एक ही किताब पढ़ी हो।'' एक किताब के आधार पर वह अपने ज्ञान को पूर्ण मानता रहता है।

साहित्य जगत को जहाँ सामाजिक समस्याओं को संबोधित करने वाली अधिक गहरी और प्रभावशाली रचनाओं की आवश्यकता है, वहीं पाठकों का दायरा बढ़ाने की भी ज़रूरत है। अच्छी किताबें और समझदार पाठकों की बढ़ी संख्या सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए बढ़ा जनमत तैयार कर सकती है। किसी बुद्धिमान व्यक्ति ने कहा है कि किताबें इसलिए खास हैं क्योंकि वे आपको पैर हिलाए बिना भी दूर-दूर की यात्रा करवा देती हैं। किताबों के महत्व के बारे में यह भी कहीं लिखा है कि एक पाठक मरने से पहले हज़ारों जिंदगियाँ जी लेता है। उठाइए अगली किताब और शुरू कीजिए सफर।

ज्ञान से अमल तक

जब ज्ञान और शोध की बात आती है, तो दो पहलू दिखाई देते हैं: पहला वह है जिसने अपना जीवन ज्ञान प्राप्त करने, कुछ नया खोजने में समर्पित कर दिया है। दूसरा वह है जो केवल बुद्धिमानों और शोधकर्ताओं की पूजा और प्रशंसा करता है, लेकिन अपनी क्षमताओं का कभी पता नहीं लगाता। बेशक, दूसरा, रास्ता पहले से आसान है। इस आसानी के प्रति मोह ने हममें से कई लोगों को वह बनने से रोक दिया है जो हम बन सकते थे। कितनी बुरी आदतें थीं जिन्हें छोड़ा नहीं गया। कितने अच्छे कर्म थे जिन्हें अपनाया नहीं गया। हमने उनका प्रयोग नहीं किया, लेकिन शुरुआत हमेशा की जा सकती है।

ऐंथ्रोपोकिनसीमोलोजी के विशेषज्ञों के अनुसार, मनुष्यों ने अभी तक अपने मस्तिष्क का पंद्रह प्रतिशत से अधिक उपयोग नहीं किया है। यह सीमा महान बुद्धिमानों, शोधकर्ताओं और बुद्धिजीवियों के लिए है। आम आदमी केवल दो से चार प्रतिशत का उपयोग करके ही पारिवारिक जिम्मेदारियों का भुगतात करके खत्म हो जाता है। आग में जलकर और कब्र में दफन हो के कितनी संभावनाएं अप्रयुक्त रह जाती हैं। अगर हम थोड़ा सा पैसा, थोड़ी सी संपत्ति खो देते हैं, तो हमें कष्ट होता है। हम मरने-मारने तक चले जाते हैं, लेकिन हमने कभी किसी को मस्तिष्क के अप्रयुक्त खजाने के व्यर्थ जाने पर पछतावा करते नहीं देखा। हमें इस बारे में सतर्क रहना चाहिए। अपनी क्षमता को साकार करने के लिए हमें तुरंत योजना बनाने की आवश्यकता है।

न्यूटन जैसे बुद्धिमान का मानना है कि समझदार बनने के लिए दस प्रतिशत प्रेरणा और नब्बे प्रतिशत कड़ी मेहनत ही एकमात्र उपाय है। आइंस्टीन ने अपनी उपलब्धियों का श्रेय अपनी अदम्य जिज्ञासा को दिया। उन्होंने कहा, 'उसके पास कोई विशेष प्रतिभा नहीं है। वह केवल एक उत्साही जिज्ञासु है।' जिसकी जिज्ञासा मर जाती है, वह महान नहीं बन पाता।

हाल ही में, जर्मन शोधकर्ताओं ने बुद्धिमान बनने की इच्छा रखने वालों के लिए कुछ उपाय खोजे हैं। उनका कहना है कि चुने हुए कार्य में केवल दस हजार घंटे लगाने से ही वांछित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। अवसर मिलना महत्वपूर्ण है, लेकिन वादि अवसरों को एकाग्र परिश्रम के साथ जोड़ा जाए, तो साधारण भी विशेष दस सकता है। डैनियल नामक एक शोधकर्ता के अनुसार, दस हजार घंटे के अभ्यास से मानव मस्तिष्क में 'विशेष गुण' विकसित होते हैं। हालोंकि यह उपाय हमें महान विद्वान या महान आविष्कारक नहीं बना सकता, लेकिन हमें अधिकाधिक बुद्धिमान बनने से कोई नहीं रोक सकता।

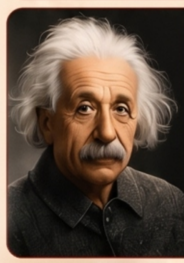
अवतार गोंदारा





समझदार बनने के लिए दस प्रतिशत प्रेरणा और नब्बे प्रतिशत कड़ी मेहनत ही एकमात्र उपाय है।

- न्यूटन



उसके पास कोई विशेष प्रतिभा नहीं है। वह केवल एक उत्साही जिज्ञासु है।

- आइंस्टीन



जूलाई-अगस्त 2026 Reg. No. HARHIN/2014/60580 वर्ष 13 अंक 4

"वास्तविक पहचान

आप चाहे गोरे हों या काले। आजकल हम बाहरी सुंदरता को अधिक महत्व देने लगे हैं। यही चीज़ आपको प्रभावित करने लगी है। वास्तव में, आपकी पहचान आपके काम से होती है और यही आपकी पहचान होनी चाहिए।

चाहे राष्ट्रवाद हो, जाति हो, धर्म हो, ये सभी दी गई पहचानें हैं। इनमें आपका कोई हाथ नहीं है। मेरा जन्म इस देश में हुआ या मैं एक हिंदू परिवार में पैदा हुई। इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है। यह महज़ एक संयोग है।

मुझे सिखाया गया है कि दोस्त चुनते समय उसके व्यवहार और चरित्र को देखो। यह मत देखो कि वह किस धर्म, किस जाति, किस रंग या किस देश का है। मुझे उस खुलेपन से बहुत कुछ मिला है जिसमें मैं पैदा हुई और पली-बढ़ी। हमारे देश में 'विविधता में एकता' है। जब मैं एकता में दरार देखती हूँ, तो मुझे दुख होता है।"

नंदिता दास
(प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक)



जीवन का उद्देश्य


साधन, लक्ष्य नहीं

सभ्य लोगों के लिए, पैसा, घर और संपत्ति केवल जीवन जीने के साधन हैं, न कि ऐसे लक्ष्य जिन्हें जीवन के वास्तविक उद्देश्य के लिए कभी हासिल नहीं किया जा सकता। इन्हें त्यागा भी जा सकता है।


विश्व यात्रा-दुनिया को जानना

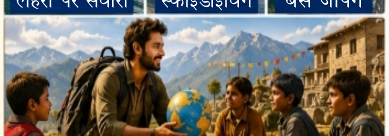
विश्व यात्रा, पहाड़ों और समुद्रों की यात्रा, लहरों पर सवारी, स्काईडाइविंग और बेस जंपिंग, कला, साहित्य और विज्ञान को समर्पित जीवन, या हमारे राहुल संक्रांति की तरह अपना घर छोड़कर पूरी दुनिया को अपना घर बनाना, दुनिया को जानना और लोगों के साथ अपना ज्ञान साझा करना, या भगत सिंह की तरह दुनिया और सभी लोगों को बेहतर सामाजिक वातावरण प्रदान करने के लिए क्रांतिकारी संघर्ष में शामिल होना, आदि ही एक अच्छे मानवीय जीवन के उद्देश्यों में शामिल हो सकते हैं।


लहरों पर सवारी


स्काईडाइविंग


बेस जंपिंग


कला, साहित्य और विज्ञान को समर्पित जीवन


राहुल संक्रांति की तरह पूरी दुनिया को अपना घर बनाना लोगों के साथ ज्ञान साझा करना

"क्रांति की तलवार विचारों की शान से तेज होती हैं"
- भगत सिंह -





भगत सिंह की तरह बेहतर सामाजिक वातावरण के लिए क्रांतिकारी संघर्ष में शामिल होना

धन, संपत्ति, घर - ये सब जीवन की यात्रा के पड़ाव भर हैं, मंज़िल नहीं।
मानव जीवन का सच्चा उद्देश्य है - स्वयं को और समाज को बेहतर बनाना, ज्ञान, प्रेम और सेवा से दुनिया को सुंदर बनाना।

If undelivered please return to :
Tarksheel
Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55
Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....